प्रकाशक :—

**फ्रैंक ब्रादर्स एण्ड कम्पनी**

**चाँदनी चौक, देहली।**

सं० २००२ वि०, सन् १९४६ ई०

सम्मनलाल यादव

क प्रबन्ध से भानु प्रिंटिंग प्रेस, देहली में छपी।

* ओ३म् *

# प्राक्कथन

निस्सन्देह किसी का जीवन चरित लिखना अत्यन्त कठिन कार्य है और ऐसी दशा में तो और भी जब की सारी सामग्री स्वयं जुटानी पड़े। किन्तु सौभाग्य से मेरे साथ यह बात नहीं है। चरित-नायक ने स्वयं ही न केवल अपने सम्बन्ध में अपितु अपने से सम्बन्धित अनेक बातों के सम्बन्ध में भी बहुत विस्तार से लिखकर उक्त कठिनाई को तो सर्वथा ही दूर कर दिया है। क्योंकि उनकी अपनी आत्मकथा की मूलभाषा अँग्रेजी थी अतः आर्यभाषा-भाषियों के लिये अनुवाद की आवश्यकता तो थी ही। उसे भी माननीय श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय जैसे उच्चकोटि के लेखक ने पूरा कर दिया था। और जिसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। अब यह प्रश्न स्वभावतः उठता है कि तब क्या आवश्यकता थी मुझ जैसे लेखक को यह चरित लिखने की? जैसा कि मैंने ऊपर कहा है कि उक्त आत्मकथा बहुत विस्तार-पूर्वक लिखी गयी है। इस कारण से उसका कलेवर इतना बढ़ गया है कि साधारण कोटि के व्यक्ति न तो उसे मोल ले सकते हैं और न उसे पढ़ सकते हैं क्योंकि मोटे पोथे तो अत्यन्त स्वाध्यायशील

व्यक्तियों द्वारा ही पढ़े जाते हैं। साधारण जनों के लिये तो संक्षेप में मुख्य २ सारी बातें आ जानी चाहियें जिससे वह अपने अल्प काल में ही उसका अध्ययन कर सकें। दूसरे उक्त आत्मकथा का विस्तार साधारण लोगों एवं विद्यार्थियों के लिये तो कुछ अनुपयोगी सा भी प्रतीत होता है। अतः स्थानीय फ्रैंक ब्रादर्स एण्ड कं० के स्वामी प्रसिद्ध प्रकाशक श्री मा० किशोरीलाल जी की चिरकाल से यह इच्छा थी कि देश के एकमात्र नेता नवयुवकों के प्राण श्री जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा (मेरी कहानी) का एक छात्रोपयोगी संक्षिप्त संस्करण (जो सब साधारण के लिये भी उपयुक्त हो) निकाला जाय। एतदर्थ उन्होंने मुझे प्रेरित किया और यह उन्हीं की प्रेरणा का परिणाम है कि यह संस्करण आप के सम्मुख है।

मैंने इसका आत्मकथा का रूप नहीं रखा अपितु जीवनचरित का रूप दे दिया है, अर्थात् वर्णन चरितनायक की ओर से न होकर लेखक की ओर से हुआ है। यद्यपि यह स्पष्ट ही है कि प्रायः सारा का सारा वर्णन चरितनायक का अपना किया हुआ है मैंने तो उसमें कहीं २ ही कुछ मिश्रण किया है जो कि आवश्यक था। इससे एक लाभ यह भी हुआ है कि यदि कहीं नायक के किसी विशिष्ट कार्य की प्रशंसा की आवश्यकता पड़ी है तो वह इस रूप में उचित प्रतीत होती है जब कि आत्मकथा रूप में वैसी नहीं। एवं उसमें स्वयं चरितलेखक को कुछ संकोच से भी काम लेना पड़ता है। वह कठिनाई अथवा अनुचितपने का दोष इस रूप में दूर हो गया है।

मुझे आशा ही नहीं अपितु विश्वास है कि जिन लोगों के निकट तक पहुंचाने के लिये यह पुस्तक लिखी गई है वे लोग इसको इस रूप व कलेवर में पसन्द करेंगे। अन्त में मैं श्रीमाननीय हरिभाऊ जी उपाध्याय को अनेकशः धन्यवाद दूँगा कि यदि उन्होंने मूल पुस्तक का आर्यभाषा में अनुवाद न किया होता तो स्यात मैं इस पुस्तक के सम्पादन में इतना शीघ्र सफल न होता। साथ ही श्री मा० किशोरीलाल जी को भी बहुत २ धन्यवाद देता हूँ कि जिनकी प्रेरणा से मैंने यह पुस्तक लिखी।

भवदीय—

सत्यकाम

(सि० शास्त्री)

माघी पूर्णिमा, सं० २००२ वि०

देहली।

ओ३म

# विषय-सूची


१—वंश-परिचय .... .... १
२—जन्म तथा बालकाल .... .... ६
३—प्रारम्भिक शिक्षा .... .... ११
४—इङ्गलैण्ड में .... .... १३
५—स्वदेश में .... .... १६
६—गृहस्थ-प्रवेश .... .... २१
७—हिमालय की घटना .... .... २२
८—राजनीति में प्रवेश .... .... २५
९—कृषक-सम्पर्क .... .... ३१
१०—असहयोग आन्दोलन .... .... ३८
११—प्रथम कारावास .... .... ४३
१२—पुनः कारावास .... .... ४६
१३—सार्वजनिक जीवन .... .... ५२
१४—नाभा काण्ड .... .... ५६
१५—मुहम्मद अली के साथ .... .... ६१
१६—पुनः योरप-यात्रा .... .... ६६
१७—पुनः भारतीय राजनीति में .... .... ७१
१८—लाठी-प्रहारनुभव .... .... ७७
१९—राष्ट्रपति के पद पर .... .... ८४

* ओ३म् *

प्रथमाध्याय—

# वंश-परिचय

२०० वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके होंगे जब कि हमारे चरितनायक जवाहरलाल नेहरू के पूर्वज भारत के सुन्दरतम प्रदेश काशमीर में निवास करते थे। समय की गति बड़ी विचित्र है। अनेक ऐसे अवसर आते हैं कि जब हमें अपनी प्रियतम, रमणीक मनोहारी वस्तु को भी त्यागना पड़ता है। मुगल शासनकाल में काशमीर निवासी उक्त पूर्व-पुरुष धन और यश की प्राप्ति के लिये अपने प्रिय देश को त्याग भारत की राजधानी देहली में आ बसे।

देहली में आ बसने वाले इन पूर्वज का नाम था राजकौल। यह संस्कृत और फारसी के विद्वानों में ख्यातिप्राप्त थे। देहली नरेश फ़र्रुख़सियर जब काशमीर गये तो उनकी दृष्टि इन पर पड़ी और स्यात् उन्हीं की प्रेरणा से ये देहली आये। इन्हें राजा की ओर से निवासार्थ-गृह और निर्वाहार्थ कुछ अचल सम्पति दी गयी। निवास-गृह नहर के तट पर स्थित था अतएव इनका नाम नेहरू पड़ गया। पहले कौल जो कौटुम्बिक नाम था उसके

२०—पिता का देहान्त .... .... ९१
२१—करांची कांग्रेस .... .... ९७
२२—लंका में विश्राम .... .... १०१
२३—गोलमेज कांफ्रेंस .... .... १०४
२४—समझौते का अन्त .... .... १०८
२५—बरेली और देहरादून जेलों में .... .... ११३
२६—धर्म-विचार .... .... ११७
२७—जेल से बाहर .... .... १२०
२८—भाषा व लिपि .... .... १२२
२९—समाजवादी विचार .... .... १२७
३०—पुनः कारावास .... .... १३०
३१—नैराश्य .... .... १३१
३२—पुनः देहरादून जेल में .... .... १३३
३३—ग्यारह दिन बाहर .... .... १३६
३४—पुनः जेल में .... .... १३९
३५—पत्नी-वियोग .... .... १४२
३६—कांग्रेस से उद्विग्नता .... .... १४४
३७—बर्मा-भ्रमण .... .... १४६
३८—योरप-प्रस्थान .... .... १४७
३९—कांग्रेस से उपरामता .... .... १४८
४०—लंका तथा चीन-यात्रा .... .... १४९
४१—द्वितीय काश्मीर-यात्रा .... .... १५०
४२—३ वर्षीय कारागार .... .... १५०
४३—अब हमारे मध्य में .... .... १५१

* ओ३म् *

प्रथमाध्याय—

## वंश-परिचय

२०० वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके होंगे जब कि हमारे चरितनायक जवाहरलाल नेहरू के पूर्वज भारत के सुन्दरतम प्रदेश काशमीर में निवास करते थे। समय की गति बड़ी विचित्र है। अनेक ऐसे अवसर आते हैं कि जब हमें अपनी प्रियतम, रमणीक मनोहारी वस्तु को भी त्यागना पड़ता है। मुगल शासनकाल में काशमीर निवासी उक्त पूर्व-पुरुष धन और यश की प्राप्ति के लिये अपने प्रिय देश को त्याग भारत की राजधानी देहली में आ बसे।

देहली में आ बसने वाले इन पूर्वज का नाम था राजकौल। यह संस्कृत और फारसी के विद्वानों में ख्यातिप्राप्त थे। देहली नरेश फर्रुखसियर जब काशमीर गये तो उनकी दृष्टि इन पर पड़ी और स्यात् उन्हीं की प्रेरणा से ये देहली आये। इन्हें राजा की ओर से निवासार्थ-गृह और निर्वाहार्थ कुछ अचल सम्पत्ति दी गयी। निवास-गृह नहर के तट पर स्थित था अतएव इनका नाम नेहरू पड़ गया। पहले कौल जो कौटुम्बिक नाम था उनके

स्थान पर कौल नेहरू हुआ पुनः शनैः शनैः कौल तो लुप्त हो गया और केवल नेहरू रह गया।

वह समय भी आया जबकि इस कुटुम्ब के वैभव का अन्त सा हो चला और सारी सम्पत्ति विनष्ट हो गयी। जवाहरलाल जी के प्रपितामह लक्ष्मीनारायण नेहरू देहली नरेश की नाम मात्र की शासन-सभा में कम्पनी सरकार के प्रथम वकील हुए। इस प्रतिभाशाली वंश में उत्पन्न पं० गंगाधर जी नेहरू (जवाहर-लाल जी के पितामह) देहली नगर के, सं० १६१४ के विद्रोह के कुछ पूर्व तक, कोटपाल थे। सम्वत् १६१४ का सिपाही विद्रोह न केवल इस परिवार के विनाश का अपितु देहली-सम्बन्ध विच्छेद का कारण भी हुआ। निष्प्रतिभ राजा बहादुर शाह को विद्रोह के परिणाम में राज-व्यवहार-कुशल अंग्रेजों द्वारा देहली से निर्वा-सित होना पड़ा। और इसी प्रवाह में पं० गंगाधर जी भी बह गये। उस समय उनके साथ उनकी छोटी वहिन और दो पुत्र (नन्दलाल और वंशीधर) थे। चरितनायक के जन्मदाता पं० मोतीलाल जी का जन्म तब तक न हुआ था। दैवयोग से मार्ग में इनको कुछ गोरे मिल गये जिन्होंने पं० गंगाधरजी को उनकी वहन की गौरांगता व तत्सम-सुंदरता के कारण अपनी गोली का लक्ष्य वना दिया होता—क्योंकि उन्होंने यह समझा कि ये किसी अंग्रेज महिला को भगाये लिये जा रहे हैं—किन्तु उन दोनों पुत्रों ने, जो कुछ अंग्रेजी का ज्ञान रखते थे, उन भ्रान्त गौरांगों को वास्तविकता से परिचित कर दिया और इस प्रकार

उनसे जान बचाकर पं० गंगाधर जी आगरा पहुँचे और वहीं रहने लगे।

सं० १९१८ वि० तदनुसार सन् १८६१ ई० में ३४ वर्ष की पूर्ण युवावस्था में इनका देहान्त हो गया।* देहान्त के ३ मास के पश्चात् ६ मई को आगरे में ही चरितनायक के पिता पं० मोतीलाल जी का जन्म हुआ। नवजात शिशु का पालन-पोषण उसकी माता व दोनों बड़े भ्राताओं को करना पड़ा। दोनों भ्राताओं में परस्पर अत्यन्त प्रेम था और उनमें बन्धु-प्रेम, पितृ-प्रेम और वात्सल्य का अनोखा मिश्रण था। मोतीलाल छोटे होने के कारण अपनी माता के बहुत लाडले थे।

कुछ बड़े होने पर माता व भाइयों की देख रेख में इनका शिक्षा क्रम प्रारम्भ हुआ। यद्यपि यह बहुत तीव्र बुद्धि और होनहार जान पड़ते थे किन्तु चंचलता के कारण पढ़ने में ध्यान नहीं लगाते थे। अधिकतर समय खेलने में व उद्दण्डतापरिपूर्ण कार्यों में विताया करते थे और अपनी समवयस्क उद्दण्ड मंडली के अग्रणी थे। इसका कारण कुछ इनके शरीर का हृष्ट-पुष्ट होना भी था।

पहले फ़ारसी की शिक्षा प्राप्त की तत्पश्चात् लगभग १२-१३ वर्ष की आयु में अंग्रेज़ी का शिक्षण आरम्भ हुआ।

---

* इनका एक चित्र जवाहरलाल जी के पास है जिसमें वे एक मुगल सरदार से लगते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है यद्यपि ये पढ़ने में विशेष ध्यान न देते थे। तथापि तीक्ष्ण बुद्धि होने से अपने पाठ सहज में ही समझ लेते और कण्ठस्थ कर लेते। इसी कारण अध्यापक इनसे रुष्ट रहने के स्थान पर इनकी सराहना किया करते थे।

अंग्रेजी शिक्षा एवं वैसे ही वातावरण के कारण मोतीलालजी में धार्मिकता तो नाम को भी न थी। कोरे बुद्धिवादी थे और रहन-सहन वेष-भूषा सब पाश्चात्य रंग में रंगी थी।

इनके बड़े भाई नन्दलालजी जयपुर राज्य की खेतड़ी रियासत में नौकर थे और अधिक समय वहीं रहे किन्तु अपनी आयु के अन्तिम भाग में आगरे में प्रधान न्यायालय (हाई कोर्ट) में आकर वकालत करने लगे और जब न्यायालय प्रयाग(इलाहाबाद) चला गया तभी नन्दलाल जी भी वहीं पहुंच गये और तभी से नेहरू परिवार प्रयाग-निवासी बन गया।

बी० ए० तक पहुंच कर मोतीलाल जी ने स्वयं खेल-कूद में अधिक समय नष्ट करने के कारण उत्पन्न हुई अपनी निर्बलता का अनुभव किया और एक बार तो बी० ए० परीक्षा शुल्क को भी भरने से मना कर दिया जिससे कि इनके उपाध्याय(प्रोफेसर) को अत्यन्त दुःख हुआ और उसने इनके अग्रज नन्दलाल जी को इन्हें परीक्षा में बैठने के लिये प्रेरित करने को लिखा और उत्तीर्ण हो जाने का आश्वासन दिया। यद्यपि शुल्क भर दिया गया और इन्होंने प्रथम प्रश्न-पत्र भी किया किन्तु इनके साहस ने

साथ नहीं दिया और प्रायः जैसे खिलाड़ी विद्यार्थी परीक्षा से कतराते हैं उसी प्रकार शेष प्रश्न-पत्रों को नहीं किया और *ताज-महल भ्रमण में शेष दिन बिताये। इस प्रकार बी०ए० की परीक्षा से वंचित रहे।

कालान्तर प्राड्विवाक (वकालत) परीक्षा दी और हर्ष का विषय है कि उसमें यह प्रथम आये तथा स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

कानपुर में वकालत आरम्भ की और अल्प समय में ही पर्याप्त सफल हुए। ३ वर्ष पश्चात् प्रयाग पहुंच गये और वहीं अपने अग्रज नन्दलाल जी के सहायक रूप में वकालत करने लगे। नन्दलाल जी स्वयं बहुत अच्छे वकीलों में थे उनके साथ रहकर मोतीलाल जी को उन्नति का अच्छा अवसर मिला।

इनके इलाहाबाद आने के एक वर्ष पश्चात् ही नन्दलाल जी का देहान्त हो गया। जिससे इन्हें बहुत आघात पहुंचा। ये उन्हें पिता के समान मानते थे। अब उनके न रहने से सारे परिवार का भार इनके कन्धों पर आ पड़ा। मोतीलाल जी ने साहस से काम लिया और अत्यन्त परिश्रम के साथ अर्थोपार्जन में लग गये। अर्थोपार्जन किया और पूर्ण मनोयोग से किया। भाग्य ने भी साथ दिया, लक्ष्मी चरण की चेरी बन गई, साथ ही यश और सम्मान भी मिला।

---

* उन दिनों विश्वविद्यालय की परीक्षायें आगरा में हुआ करती थीं।

द्वितीयाध्याय—

## जन्म

मोतीलाल जी को सं० १६४६ वि० मार्गशीर्ष कृष्णा ७, तदनुसार सन् १८८६ ई० १४ नवम्बर को जवाहरलाल रूप पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई।

## बाल-काल

पिता के धनधान्य सम्पन्न होने के कारण जिस प्रकार इनका पालन पोषण राजकुमारों की भाँति हुआ उसी प्रकार इनके प्रारम्भिक शिक्षण का प्रबन्ध भी पं० मोतीलाल जी के अपने नवीन विचारों को लेते हुए घर पर ही हुआ। फलस्वरूप जवाहर-लाल जी का बालकाल बाह्य वातावरण से प्रायः अप्रभावित रहा और कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं घटी।

हाँ, एक घटना घरेलू रूप से सामने आती है जिससे जहाँ पं० मोतीलाल जी के अपराधी के प्रति उग्र रूप धारण का प्रमाण मिलता है वहाँ जवाहरलाल जी की साम्य-प्रवृत्ति का आभास भी होता है।

घटना इस प्रकार है। जब जवाहरलाल जी लगभग ५–६ वर्ष के होंगे एक दिन इन्होंने अपने पिता की मेज पर दो फाउण्टेनपेन देखे। इनके हृदय में यह विचार आया कि "पिता जी

को १ पेन की आवश्यकता है दूसरा निष्प्रयोजन है अतः दूसरा पेन मुझे ले लेना चाहिये" और इसी विचार के साथ ही एक पेन इनकी जेब में पहुंच गया।

जब पं० मोतीलाल जी आये और इन्होंने दो पेनों के स्थान पर एक ही पाया तब तो दूसरे पेन की खोज की जाने लगी। बालक जवाहर कोई चोर तो था ही नहीं कि वह उस पेन को छिपाने का प्रयत्न करता। पेन मिल गया, साथ ही अपराधी भी। पं० मोतीलाल जी ने इस घटना को असाधारण रूप दे दिया और क्रोधावेश में आकर इन्होंने बालक जवाहर को मारते २ क्षत-विक्षत कर दिया। तदनन्तर दुःखी और पीड़ित प्राणी को एक मात्र आश्रय माता की अंकस्थली में जाकर ही उस ताड़ना से मुक्ति मिली। पर्याप्त समय की उपचर्य्या के अनन्तर बालक के क्षत भरे और वह पूर्ण स्वस्थ हो पाया।

इस घटना के अनन्तर यह स्वाभाविक ही था कि बालक पिता से भयभीत रहने लगा। यद्यपि वह उनका अत्यन्त सम्मान करता था उनके प्रति किसी भी प्रकार की अवहेलना का भाव भी उसके हृदय में नहीं आसकता था किन्तु पुनरपि उनकी ओर दृष्टि डालने में भी घबराता था। और यदा-कदा तो उनकी उग्रता से दुःखी होकर भाग खड़ा होता और परम शान्तिदायिनी माता की अंक में जाकर शान्ति की प्राप्ति करता। निस्सन्देह बालक जवाहर की दृष्टि में उसकी माता सुन्दर सुखद दया की साक्षात् प्रतिमा थी और उसके निकट पहुंच कर वह सारे क्लेशों को भूल जाता था।

माता के इस असीम प्रेम के कारण कभी २ यह उस पर प्रभावशाली होने का प्रयत्न किया करते थे। इनकी माता व चाचियां इन्हें हिन्दू पुस्तकें तथा रामायण महाभारत की कथाएँ सुनाया करती थीं। जिससे इन्हें हिंदू पौराणिक कथाओं और गाथाओं का पर्याप्त ज्ञान हो गया था। पुनरपि इनका प्रभाव कुछ न था।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि इनके पठन-पाठन का प्रबन्ध घर पर ही किया गया था और वह भी पाश्चात्य प्रणाली पर। अर्थात् जहाँ सुयोग्य अध्यापकों की शिक्षा का प्रबन्ध हुआ वहाँ शिक्षिकाओं द्वारा भी इन्हें शिक्षा दिलाई गई और इस प्रकार यद्यपि बालक पर बाह्य प्रभाव प्रायः नहीं पड़े परन्तु पाश्चात्य संस्कार अपना पूर्ण प्रभाव डालते रहे।

कभीर विवाहादि उत्सवों में यह बाहर जाते तब बाहर के बालक बालिकाओं का संसर्ग होता और इन्हें स्वतन्त्रता से खेलने कूदने और उद्दण्डता करने का अवसर प्राप्त होता। कभी २ वृद्धों की भर्त्सना भी सुननी पड़ती।

विवाहादि शुभावसरों पर होने वाले व्यय के सम्बन्ध में जवाहरलाल जी ने अपनी आत्म-कथा में जो विचार व्यक्त किये हैं वे उन्हीं के शब्दानुवाद में निम्न हैं:—

"भारतवर्ष में क्या निर्धन और क्या धनी सब जिस प्रकार विवाहादि अवसरों पर धूमधाम और अपव्यय करते हैं, उनकी प्रत्येक प्रकार बुराई ही की जाती है और वह ठीक भी है। अप-व्ययता के अतिरिक्त उसमें बड़े भद्दे ढंग के प्रदर्शन भी होते हैं,

जिनमें न कोई सुन्दरता होती है, न कला (कहना न होगा कि इसमें अपवाद भी होते हैं)। इन सब के वास्तविक अपराधी हैं मध्यवर्ग के लोग। निर्धन भी ऋण लेकर अपव्यय करते हैं। किन्तु यह कहना नितान्त निरर्थक है कि उनकी दरिद्रता उनकी इन सामाजिक कुप्रथाओं के कारण है। प्रायः यह भुला दिया जाता है कि निर्धनों का जीवन बड़ा उदास, नीरस और एक ढर्रे का होता है। जब कभी कोई विवाहोत्सव होता है तो उसमें उन्हें अच्छे भोजन पान और गाने बजाने का कुछ अवसर मिल जाता है, जोकि उनकी परिश्रम रूपी मरुस्थली में स्रोत के समान होता है। अहर्निश के जी उकता देने वाले काम काज और जीवन क्रम से हटकर कुछ आराम और आनन्द की छटा दीख जाती है, और जिनको हँसने खेलने के इतने अल्प अवसर मिलते हैं उनको कौन ऐसा निष्ठुर बेपीर होगा जो इतना भी आनन्द, आराम और शान्ति न मिलने देना चाहेगा? हाँ अपव्ययता को आप अवश्य बन्द कर दीजिए और उनके राज व्यय को भी—कैसे कड़े और निरर्थक शब्द हैं ये जो उस थोड़े से प्रदर्शन के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं,जिसे निर्धन अपनी निर्धनता पर भी दिखाते हैं—कम कर दीजिये, किन्तु कृपा करके उनके जीवन को और अधिक उदास और आनन्द उल्लास से रहित मत बनाइये।

यही बात मध्यम श्रेणी के लोगों के लिये भी है। अपव्ययता को छोड़ दें तो उत्सव एक प्रकार के सामाजिक सम्मेलन ही हैं

जहां कि दूर के सम्बन्धी और पुराने इष्ट मित्र चिरकाल में मिल पाते हैं। हमारा देश बड़ा लम्बा चौड़ा है, यहाँ अपने सभी साथियों व मित्रों से मिलना सरल नहीं है। सब का साथ और एक स्थान पर मिलना तो और भी कठिन है। अतएव यहाँ विवाहोत्सवों के लोग इतना इच्छुक रहते हैं। एक और वस्तु इसकी वरावरी की है और कुछ वातों में तो, और सामाजिक सम्मेलन की दृष्टि से भी, वह उससे आगे निकल गयी है। वह है राजनीतिक सम्मेलन अर्थात् प्रान्तीय परिषदें या कांग्रेस के अधिवेशन।"

जब इनकी आयु १० वर्ष की हुई तब नेहरू-परिवार एक नये विशाल-गृह में चला गया जिसका नाम इनके पिता जी ने आनन्द भवन रखा था। इस विशाल भवन में एक वड़ा उद्यान और तैरने के लिये एक विशाल जलाशय था जिसमें इन्होंने तैरना सीखा। पानी में इन्हें तनिक भी भय नहीं प्रतीत होता था।

उन दिनों वोअर युद्ध हो रहा था। उसमें इनकी रुचि होने लगी। वोअरों की ओर इनकी सहानुभूति थी। इस युद्ध के समाचारों को पढ़ने के लिये ये समाचार-पत्र पढ़ने लगे।

इसी समय इनके एक वहन हुई जिससे इन्हें वहुत ही प्रसन्नता हुई। इनके हृदय में एक चिन्ता सी रहा करती थी कि "जब औरों के भाई-बहन हैं तो मेरे कोई भाई-वहन क्यों नहीं हैं।" परमात्मा ने वह चिन्ता दूर कर दी। सहोदर-जन्म के समाचार के श्रवणार्थ ये वड़े उत्सुक हो रहे थे कि एक डाक्टर ने वहन होने का समाचार

देते हुए कहा—सम्भवतः हास्य में—"तुमको प्रस[illegible] भाई नहीं हुआ जो तुम्हारी सम्पत्तिमें भाग करता।" यह बात इन्हें बहुत चुभी और क्रोध भी आ गया—यह सोचकर कि इन्हें कोई इतना नीच विचार रखने वाला समझे।

## प्रारम्भिक शिक्षा

जिस समय जवाहरलाल जी की आयु लगभग ११ वर्ष की थी उस समय एफ०टी० ब्रुक्स नाम के एक अध्यापक इन्हें पढ़ाने के लिये नियुक्त किये गये। वह इनके साथ ही रहते थे। यह सज्जन कट्टर थियोसोफ़िस्ट थे। पं० मोतीलाल जी में धार्मिक भावना नाम मात्र को भी न थी अतः बालक जवाहर को पिता से धार्मिक संस्कार व विचार सर्वथा मिले ही नहीं अपितु कुछ विरोधी विचार ही मिले क्योंकि जब कभी किसी धार्मिक विषय पर वार्तालाप होता तो पं० मोतीलाल जी उसका पूर्ण हास्य करते। फलतः जवाहरलाल जी अपने धर्म-ज्ञान से वंचित रहे और ऐसा कोरा घड़ा पाकर ब्रुक्स साहिब ने उस पर अपना रङ्ग चढ़ाना आरम्भ कर दिया। और कहने की आवश्यकता नहीं कि बहुत शीघ्र ही उन्होंने बालक जवाहरलाल को थियोसोफ़िस्ट बना डाला। २ वर्ष पश्चात् १३ वर्षीय जवाहरलाल जी का थियोसोफ़िकल सोसायटी की अध्यक्षा श्रीमती एनी बेसेन्ट के हाथों अभिषेक संस्कार हुआ।

एफ़० टी० ब्रुक्स के सहवास से इनको पुस्तकें पढ़ने की रुचि हुई और इन्होंने कई पुस्तकें पढ़ीं। यद्यपि सब निरुद्देश्य। बालकों

और नवयुवकों सम्बन्धी अच्छा साहित्य इन्होंने पढ़ लिया था। पठित पुस्तकों में से फ़िजाफ नान्सन की 'फारदेस्ट नार्थ' ने इनके लिये अलौकिकता और साहस के एक नये संसार का द्वार उद्घाटित कर दिया था।

ब्रुक्स ने विज्ञान के रहस्यों से भी इन्हें परिचित कराया। इन्होंने एक विज्ञान—प्रयोग शाला बनाली थी और ये घण्टों उसमें वस्तु-विज्ञान व रसायन-शास्त्र के प्रयोग किया करते थे। जो इन्हें बहुत रुचिकर प्रतीत होते थे।

प्रति सप्ताह ब्रुक्स साहब के कमरे पर थियोसोफिस्टों की सभा हुआ करती। उसमें ये भी जाते और शनैः शनैः थियोसोफ़ी की भाषा और विचारशैली इनके हृदयङ्गम होने लगी। वहाँ थियोसोफ़िस्टों से लेकर हिन्दू धर्म ग्रन्थों, बौद्ध ग्रन्थ व यूनानी लेखकों के ग्रन्थों की चर्चा होती। यद्यपि वह सब कुछ तो यह न समझ पाते किन्तु जो कुछ समझे उससे जहाँ इनके विचार थियोसोफ़ी की ओर झुके वहाँ हिन्दू धर्म विशेष रूप से इनकी दृष्टि में ऊँचा उठ गया था। इसका कारण उसके क्रियाकाण्ड और व्रत-उत्सव नहीं थे—उसके महान् ग्रंथ उपनिषद् और भगवद्-गीता थे।

ब्रुक्स साहब से पृथक् होते ही थियोसोफ़ी से भी इनका सम्पर्क छूट गया और अत्यन्त अल्पकाल में ही थियोसोफ़ी इनके जीवन से सर्वथा हट गयी। इसका एक कारण तो इनका इङ्गलैंड चला जाना था। तथापि निस्संदेह ब्रुक्स साहब की

संगति का इन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा और ये उनका और थियोसोफी का अपने को बहुत ऋणी मानते हैं।

परन्तु अब थियोसोफिस्ट इनकी दृष्टि में कुछ नीचे उतर गये हैं क्योंकि वे कष्ट सहने की अपेक्षा आरामेच्छुक हैं। अतः ऊँचे एवं बढ़े चढ़े होने के स्थान पर साधारण जन से दिखाई देते हैं। आत्मोत्सर्ग करने वालों के अनुयायी होने की अपेक्षा पुष्प-पथ पर चलना पसन्द करते हैं।

## इङ्गलैण्ड में

भारतवर्ष में १६ वर्ष की आयु तक शिक्षा प्राप्त कर चुकने के अनन्तर इनके पिता इन्हें सं० १९६२ वि० (सन १९०५ ई० के मई मास) में अपने साथ इंगलैंड ले गये और वहाँ के हैरो के स्कूल में इन्हें प्रविष्ट करा दिया। यह स्कूल इङ्गलैंड के ख्यातिप्राप्त विद्यालयों में से है। जिसमें प्रायः धनी वर्ग के बालक विद्याध्ययन करते हैं। दो वर्ष तक इस विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करके सं० १९६४ (सन् १९०७) में यह कैम्ब्रिज के विश्व-विद्यालय में पहुंच गये और सं० १९६७ में यहाँ ३ वर्ष के अध्ययन के अनन्तर बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी०ए० में इनके विषय थे रसायन शास्त्र भूगर्भ शास्त्र और वनस्पतिशास्त्र। कैम्ब्रिज में इन पर प्रभाव डालने वाली पुस्तकों में से लोवेस डिकिन्सन की 'एशिया और यूरोप' मुख्य है। सं० १९६७ में कैम्ब्रिज से अपनी उपाधि लेने के तत्काल पश्चात् जब ये भ्रमणार्थ नार्वे गये थे तब एक बार मृत्यु के मुँह में से बचे थे।

ये अपने अन्य साथियों समेत पर्वतीय प्रदेश में पदाति परिभ्रमण कर रहे थे। भ्रमण से शरीर अत्यन्त श्रान्त हो रहा था। एक छोटे से होटल में पहुंचे। उष्णतावश स्नान करने की इच्छा प्रकट की। वहाँ ऐसी बात पहले किसी ने न सुनी थी। होटल में स्नान का कोई प्रबन्ध न था किन्तु इन्हें बताया गया कि पास की एक नदी में स्नान कर सकते हैं। अतः ये और इनका एक अंग्रेज साथी पड़ोस के हिमसरोवर से निकलती और कलकल नाद करती हुई उस वेगवती धारा में जा पहुंचे। ये पानी में घुस गये वह गहरा तो न था किन्तु शीतल इतना था कि हाथ पाँव जमे जाते थे और भूमि बड़ी रपटीली थी। ये रपट कर गिर गये। उस हिमवत् शीतल सलिल में इनके हाथ पैर निर्जीव होगये। शरीर और सारे अवयव शून्य पड़ गये। और पैर न जम सके। वह वेगवती धारा इन्हें तीव्रता से बहाये ले जा रही थी किन्तु इनके अंग्रेज साथी ने किसी तरह बाहर निकल कर साथ २ भागना आरम्भ किया तथा अंत में इनका पैर पकड़ने में सफल हो कर इन्हें बाहर खींच लिया तदनन्तर इन्हें ज्ञात हुआ कि ये कैसी घोर आपत्ति में पड़ गये थे क्यों कि इनसे दो तीन गज की दूरी पर वह धारा एक विशाल चट्टान के नीचे गिरती थी और वह जल प्रपात उस स्थान की दर्शनीय वस्तु थी। धर्म शास्त्र में कहा है :—"नाविज्ञाते जलाशये" अज्ञात जलाशय में न घुसे।

इन्हीं दिनों इन्हें हैरो के पुराने मित्रों के साथ रहने का अवसर मिला। उनके साथ इनका स्वभाव अतिव्ययी हो गया।

इनके पिता जी व्ययार्थ पर्याप्त रुपया भेजते थे किन्तु ये उससे भी अधिक व्यय कर डालते थे। अतः उन्हें इनके विषय में बड़ी चिन्ता हो चली थी उन्हें आशंका हो गई थी कि कहीं ये किसी कुसंगति में तो नही पड़ गये हैं। परन्तु वास्तव में ऐसी कोई बात तो न थी किन्तु केवल उन गाँठ के पूरे और आँख के अन्धे अंग्रेजों का अन्धानुकरण कर रहे थे जो बड़े ठाट बाट से रहा करते थे इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि उस उद्देश्यहीन आमोद परिपूर्ण जीवन से इनकी किसी प्रकार की उन्नति नहीं हुई। इनके पहले के साहसोत्साह मंद पड़ रहे थे और केवल एक वस्तु बढ़ रही थी—इनका अहंकार।

इसके दो वर्ष पश्चात् इन्होंने २३ वर्ष की अवस्था में बैरिस्टरी की परीक्षा उत्तीर्ण की एवं ७ वर्ष से कुछ अधिक काल इङ्गलैंड में रह कर सं० १९६० (सन् १९१२ ई०) में स्वदेश लौट आये।

हैरो में जवाहरलाल जी को कुछ अधिक अनुभव नहीं प्राप्त हो सका था क्योंकि वहाँ का वातावरण विस्तृत न था किन्तु कैम्ब्रिज में यह बात न थी। यहाँ इन्हें इंगलैंड के वास्तविक रूप का दिग्दर्शन हुआ और उसके नैतिक जीवन का भी अध्ययन करने का इन्हें पर्याप्त अवसर मिला।

निस्सन्देह यही अवस्था होती है जबकि नवयुवकों के विचार कुछ परिपक्वावस्था को प्राप्त होते हैं और उनके भावी कार्यक्रम की आधार शिला का आरोपण होता है। "आषोडशाद् वृद्धिः"। यही वह अवस्था है जबकि मानव का पूर्ण विकास होता

है। क्या शारीरिक, क्या मानसिक अथवा आत्मिक। इस काल में नवयुवक जिस वातावरण में रहेगा जिन विचारों के मध्य विचरेगा भावी जीवन में उन विचारों, संस्कारों का बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है और यही कारण है कि आज भी हम जवाहरलाल जी में उन्हीं पाश्चात्य विचारों की छाप देखते हैं। पुस्तक-शिक्षा जीवन में गौण सा प्रभाव डालती है। चाहे वह किसी भी भाषा में क्यों न हो और कोई लेखक क्यों न हो। जीवन के मार्ग को, आदर्श को, ध्येय और साधनों को भी परिवर्तित कर देने वाली प्रायः जीवन में घटने वाली कुछ घटनायें ही होती हैं और वे प्रायः इस आयु में अधिक प्रभाव डालती हैं।

इंगलैंड की इस सप्तवर्षीय शिक्षा ने जवाहरलाल जी पर जो प्रभाव डाले उनमें से २ प्रभाव हम स्पष्टतया देख रहे हैं। प्रथम तो नियन्त्रण। द्वितीय अंग्रेज जाति के प्रति प्रतिद्रोहिक भाव। अंग्रेजों की सफलता की सब से बड़ी कुञ्जी यह है कि उनमें राष्ट्रीय नियन्त्रण की भावना कूट कूट कर भर दी जाती है। कोई भी अंग्रेज जहाँ अनुशासन का प्रश्न आयेगा वहाँ अपने व्यक्तित्व को एक ओर रख देगा। वे वैयक्तिक जीवन में जहाँ सर्वथा स्वतन्त्र और अनियन्त्रित रहते हैं वहाँ सामाजिक (राष्ट्रीय) जीवन में सर्वथा परतन्त्र-अनुशासित और नियन्त्रित। और यही कारण है कि इंग्लैण्ड का राष्ट्रीय जीवन इस सुदृढ़-नियन्त्रण-कवच से सुरक्षित है और भयंकर से भयंकर अप्रत्याशित विघ्न बाधाओं को पार करता हुआ अपने से कहीं अधिक शक्तिशाली सत्ताओं

को भी पद-दलित कर गर्वोन्मुख खड़ा हुआ है। इस नियन्त्रण की भावना ने जवाहरलाल जी पर भी स्थायी प्रभाव डाला और आज भी हम इनमें इस भावना को पूर्ण रूप में देखते हैं और इन्हें अपने विचार के सर्वथा प्रतिकूल भावनाओं और क्रिया-कलापों का भी केवल अनुशासन के कारण समर्थन करता हुआ पाते हैं।

इंगलैंण्ड में निरन्तर ७ वर्ष तक रहने के कारण जवाहरलाल जी को अंग्रेजों को अत्यन्त निकट से समझने का अवसर मिला। "दूर के ढोल सुहावने" की चरितार्थता को इन्होंने समझा। भारत में प्रभुता की स्थिति प्राप्त होने से गोरांगों के प्रति एतद्देश-निवासियों का जो आदर भाव रहता है। वह इनके हृदय में लेश-मात्र भी न रहा। 'सहवासो विजानीयात् गुणदोषान् सहवासिनाम्' ढोल के अन्दर की पोल को वही समझ सकता है जिसने कभी उसे फाड़कर देखा हो। ७ वर्ष तक अंग्रेजों में रहने से इन्होंने उनके प्रत्येक क्रिया-कलाप प्रवृत्ति, आचार-अनाचार एवं गुण-दोषों का भलीभांति निरीक्षण किया और इनके सम्मुख अंग्रेज एक उच्च कोटि का देवता तो दूर एक साधारण मानव भी नहीं रहा। इन्होंने अपने सूक्ष्म अध्ययन के द्वारा इस रहस्य को पूर्णरूपेण जान लिया कि यह अपरिचित मूर्त्ति देवरूप में दानवीय-प्रवृत्तियों से परिपूर्ण प्रतिमा है। साथ ही भारतीयों के प्रति उनके तिरस्कार-परिपूरित विचार और व्यवहारों का भी अच्छा अनुभव प्राप्त किया। इसी तिरस्कार के अहर्निश प्राप्त अनुभव ने इनके स्वाभिमानी

हृदय में अप्रत्यक्ष रूप में इंगलैण्ड और तद्देशवासियों के प्रति स्थायी प्रतिद्रौहिक भाव उत्पन्न कर दिया।

इंगलैण्ड-निवास के समय जवाहरलाल जी ने प्रत्यक्ष रूप से भारतीय-राजनीति में कोई भाग नहीं लिया किन्तु एक विद्यार्थी की भाँति भारत की राजनीति का ये सतत अध्ययन करते रहे। भारत की तात्कालिक राजनीति गोखले व तिलक की शान्त और उग्र नीति थी दोनों में पर्याप्त संघर्ष भी चल रहा था। इनका झुकाव तिलक की ओर होना स्वाभाविक ही था।

तृतीयाध्याय—

## स्वदेश में

स्वदेश लौट आने पर जवाहरलाल जी का भी पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा प्राप्त अन्य भारतीयों की भांति रसिक जीवन व्यतीत होने लगा। आनन्द भवन में प्रायः समस्त विलासोपयोगी सामग्री उपस्थित थी। किसी भी आवश्यक वस्तु का अभाव न था। अर्थोपार्जन की चिन्ता से भी कोसों दूर थे। जिसके लिये इनके पिता जी ही पर्याप्त थे। न्यायालय जाते, पर वह भी उन दिनों इनके मनोरंजन का ही साधन-मात्र था। शेष समय तो आमोद-प्रमोद में व्यतीत होता ही था। यदा-कदा, पुरोगम में नवीनता लाने के लिये, आखेट को चले जाया करते थे। किन्तु वहाँ भी अधिकतर जंगलों के भ्रमण का ही आनन्द लूटा करते किसी पशु के प्राण हरने के लिये इनका हृदय बहुत ही कम साक्षी देता था। मृगया का इनके मन में जो थोड़ा बहुत उत्साह था वह भी एक छोटे बारहसिंगे के साथ हुई घटना से शान्त पड़ गया। यह छोटा सा निर्दोष अहिंसक पशु चोट से आहत इनके पैरों पर गिर पड़ा और अपने अश्रुपरिपूर्ण आयत लोचनों से इनकी ओर निहारने लगा। तब से उन अश्रुपूर्ण लोचनों का स्मरण इन्हें प्रायः हो आया करता है।

क्रमशः इन्हें अपनी तरह के अधिकांश लोगों के साथ जिस प्रकार का जीवन बिताना पड़ता था उसकी सब नवीनता लुप्त होने लगी और यह इस बात का अनुभव करने लगे कि ये निष्क्रिय और उद्देश्य-हीन जीवन की नीरस कोष्ठ पूर्त्ति में ही फँस रहे हैं इनके अपने विचार से भी इनकी दोगली, कम से कम खिचड़ी, शिक्षा इस बात की उत्तरदायिनी थी कि इनके मन में अपनी अवस्था से असन्तोष था। इंगलैण्ड के सप्तवर्षीय जीवन में इनके जो स्वभाव व भावनाएँ बन गयीं थीं वे जिन वस्तुओं को ये यहाँ देखते थे उनसे मेल नहीं खाती थीं। सौभाग्यवश इनके घर का वातावरण बहुत अनुकूल था जिससे इनको कुछ शान्ति मिलती थी। परन्तु यह पर्याप्त न था। अतः इन प्रारम्भिक वर्षों में ये जीवन से असन्तोष अनुभव करने लगे। इस प्रकार शनैः शनैः ४ वर्ष व्यतीत हो गये।

इस बीच इनके राजनीतिक और सार्वजनिक कार्य साधारण ही थे और सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान देने तक से ये बचते रहे। इसका एक कारण यह भी था कि ये व्याख्यान अंग्रेजी में तो होने न चाहियें और इन्हें देश-भाषा में चिरकाल तक बोल सकने की अपनी क्षमता पर सन्देह था। एक बार संभवतः सं० १९७२ (सन् १९१५) में इन्हें प्रयाग में एक सार्वजनिक सभा में भाषण देने के लिये विवश किया गया। ये बोले किन्तु अत्यल्प, वह भी अंग्रेजी में।

# गृहस्थ-प्रवेश

सं० १९७२ (सन् १९१६) में वसंत पंचमी के शुभावसर पर २७ वर्ष की अवस्था में जवाहरलाल जी का देहली में कमला देवी से पवित्र पाणि-ग्रहण संस्कार ससमारोह सम्पन्न हुआ।

परमात्मा ने सर्व साधनों से सम्पन्न किया था। फिर भला कमला देवी सी दिव्य ललना को प्राप्त कर जवाहरलाल मर्त्यलोक के स्वर्ग काशमीर-परिभ्रमणानंद को क्योंकर त्यागते। विवाह के पश्चात् यह नव-दम्पति जीवन के वसंत को वास्तविक रूप में मनाने के लिये तदुपयोगी काशमीर प्रदेश में पहुंच गये और कई मास तक वहाँ के रमणीक मनोहारी प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लूटते रहे। एक तो वहाँ का अपार सौन्दर्य दूसरे नेहरू-वंश की जन्म-भूमि, द्विगुण आकर्षण था, जिसने इन्हें मोहित कर लिया। निस्सन्देह काशमीर की मनो-मोहिनी शक्ति विचित्र है। जवाहरलाल जी ने काश्मीर से चलते समय संकल्प किया कि पुनरपि एक वार यहाँ आकर स्वर्गीय आनन्द लूटेंगे। किन्तु सर्व नियन्ता की इच्छा को कौन जानता है? मनुष्य की सर्व कामनायें पूर्ण नहीं होतीं। देशोद्धार की महती आकांक्षा ने अन्य सारी आकांक्षाओं पर पानी फेर दिया। काशमीर-भ्रमण के स्थान पर कारागार-भ्रमण ही ध्येय बन गया। काशमीर की हरी भरी घाटियों का आनन्द बन्दीगृह की घाटियों (कोठरियों) में लिया जाने लगा। और इसी मध्य में काशमीर-यात्रा का सुखद स्वप्न इस

असार-संसार-स्वर्ग को परित्याग वास्तविक स्वर्ग को प्राप्त हो गया और इन्हें एकाकी कर गया। अब चिरकाल पश्चात् ये शिमला कांफ्रेंस से निवृत्त होकर कुछ दिन काशमीर में बिताकर आये हैं। किन्तु क्या यह यात्रा पूर्ववत् आकर्षणपूर्ण मनोहारी आनन्ददायक भी रही होगी?

## हिमालय की घटना

उक्त पहली कशमीर-यात्रा में एक दिन इनके साथ एक भयंकर घटना हुई। इन्होंने अपने परिवार को श्रीनगर की घाटी में छोड़ दिया था और एक चचेरे भाई के साथ कुछ सप्ताहों तक पर्वतों पर घूमते रहे तथा लद्दाख रोड तक बढ़ते चले गये।

संसार के उच्च प्रदेश में उन संकुचित और निर्जन घाटियों में, जो तिब्बत के मैदान की ओर ले जाती हैं, भ्रमण का यह इनका प्रथम अनुभव था। जोजीला घाटी—जहाँ वायु मण्डल इतना स्वच्छ था कि प्रायः इन्हें वस्तुओं की दूरी पर भ्रम हो जाता था—से आगे बढ़ते हुए एक स्थान सम्भवतः मातायन में इनसे कहा गया कि अमरनाथ की गुफा यहाँ से केवल आठ मील दूर है। यह ठीक था कि मध्य में हिमाच्छादित एक विशाल पर्वत पड़ता था जिसे पार करना था। पर इससे क्या? आठ मील होते ही क्या हैं। युवावस्था का अदम्य उत्साह था, किन्तु अनुभव-रहित। इन्होंने अपने शिविर-वितानों को जो ११५०० फीट की

ऊँचाई पर थे छोड़ दिया और एक छोटे से दल के साथ पर्वत पर आरोहण करने लगे। एक गडरिया मार्ग-प्रदर्शनार्थ साथ था। रस्सियों के आश्रय से कई हिमवती नदियां पार की गईं। कठिनाईयां बढ़ती गयीं। श्वांस लेने में भी कठिनता होने लगी। भारवाहकों में से कुछ के मुख से रक्त निकलने लगा यद्यपि उन पर अधिक भार न था। इधर हिमपात-आरम्भ हो गया तथा हिमवती नदियां भयानक रूप से रपटीली हो गयी। सब अत्यधिक श्रान्त हो गये। पद-पद बढ़ने के लिये अति यत्न करना पड़ता था तथापि यह बढ़ते ही गये। प्रातः ४ बजे चले थे और १२ घण्टे तक निरन्तर चलते रहने के पश्चात् एक सुविशाल हिमसरोवर के अवलोकन का पुरस्कार मिला। यह दृश्य अत्यन्त सुन्दर था। उसके चतुर्दिक हिम-परिपूर्ण पर्वत शिखर थे। मानों देवताओं के मुकुट अथवा अर्द्धचन्द्र हों। परन्तु गिरते हुए हिम और कुहरे ने शीघ्र ही इस दृश्य को इनकी आँखों से ओझल कर दिया। उस समय ये सम्भवतः १५-१६ सहस्र फीट की ऊँचाई पर थे। क्योंकि अमरनाथ की गुफा से बहुत ऊँचे थे। अब इन्हें इस हिम सरोवर को जो सम्भवतः आध मील लम्बा होगा, पार करके दूसरी ओर नीचे गुफा को जाना था। इन्होंने सोचा कि आरोहण-समाप्ति के साथ कठिनाइयां भी समाप्त हो गयी होंगी, अतः श्रान्तावस्था में ही वह यात्रा भी आरम्भ कर दी पर इसमें पद-पद पर भ्रान्तियां थीं क्योंकि वहाँ दरारें बहुत सी थीं और गिरता हुआ हिम उन भयंकर दरारों को आच्छादित करता

जाता था। तत्कालिक इस हिम ने ही जवाहरलाल जी का अन्त कर दिया होता। क्योंकि जैसे ही इन्होंने उस पर पैर रक्खा, वह नीचे सरक गया और ये धम्म से मुँह बाये हुए एक विशाल दरार में जा गिरे। यह दरार बहुत बड़ी थी और कोई भी वस्तु उसके अन्तस्थल में पहुंच कर सहस्रों वर्ष के अनन्तर तक भूगर्भ-शास्त्रियों के अन्वेषणार्थ पूर्णरूपेण सुरक्षित रह सकती थी। परन्तु इनके हाथ से रस्सी नहीं छूटी और ये दरार के पार्श्व को पकड़े रहे तथा ऊपर खींच लिये गये। इस घटना से इनकी साहस-शक्ति शिथिल तो पड़ गयी थी तथापि ये लोग आगे चलते ही गये। आगे इन दरारों की संख्या तथा विशालता बढ़ती ही गई। इनमें से कुछ को पार करने के कोई साधन भी इनके पास न थे अतएव अन्ततो गत्वा ये लोग परिश्रान्त, क्लान्त एवं हताश हो लौट आये और इस प्रकार अमरनाथ की गुफा इनकी अनदेखी ही रह गयी।
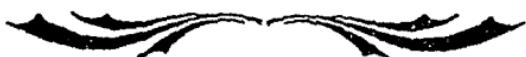
चतुर्थाध्याय—

## राजनीति में प्रवेश

साधारणतया तो इङ्गलैंड से ही ये भारतीय राजनीति में अभि-रुचि रखते थे किन्तु भारत में आने के अनन्तर समय २ पर घटने वाली घटनाओं ने इन्हें राजनीति में क्रियात्मक कार्य करने को वाध्य कर दिया। यद्यपि सं०१९६९ (सन् १९१२ ई०) में ही बड़े दिनों की छुट्टियों में होने वाले बांकीपुर के कांग्रेस-अधिवेशन में ही ये प्रतिनिधि-रूप से सम्मिलित हुए थे किन्तु तब ये कांग्रेस के नाममात्र के प्रस्तावों पर अधिक ध्यान न देते थे। इनके हृदय में वारम्बार यह प्रश्न उठता था कि यदि इन प्रस्तावों को गवर्नमेन्ट स्वीकार नहीं करती तो फिर क्या होगा? जिसका उत्तर उस समय की कांग्रेस के पास न था। बांकीपुर-अधिवेशन में सम्मिलित होने वालों में से उस अधिवेशन के प्रमुख व्यक्ति गोखले का इन पर अच्छा प्रभाव पड़ा था। श्री गोखले की भारत सेवक समिति की ओर भी ये आकर्षित हुए थे। किन्तु उसमें सम्मिलित होने का कभी विचार नहीं किया। इसके कारणों में से एक तो उनकी राजनीति इनके लिये बहुत नरम थी दूसरे उन दिनों अपना जीविका-कार्य त्यागने की इनकी कोई इच्छा न थी।

तथापि समिति के सदस्यों के प्रति इनके हृदय में पर्याप्त मान था क्यों कि उन्होंने निर्वाह मात्र पर अपने को स्वदेश सेवा में लगा दिया था और समिति के प्रति इनके यह भाव थे कि कम से कम यह एक समिति ऐसी है, जिसके लोग एकाग्र चित्त होकर निरन्तर कार्य करते हैं, फिर चाहे वह कार्य पूर्णरूपेण उचित दिशा में भले ही न हो।

म० गान्धी जी से सर्वप्रथम यह सं० १९७३ (सन् १९१६ ई०) में लखनऊ कांग्रेस में मिले। लखनऊ कांग्रेस के पश्चात् प्रयाग में सिरोजिनी नायडू ने जो कई उत्तम भाषण दिये उन से इनका हृदय कम्पायमान हो जाता था। वे भाषण आद्योपान्त राष्ट्रीयता व देश-भक्ति से परिपूर्ण होते थे तथा ये उन दिनों विशुद्ध राष्ट्रीयता-वादी थे। कालेज के दिनों के साम्यवादी भाव पीछे जा छिपे थे। सं० १९७३ (सन् १९१६) में रोजर केसमेण्ट* ने अपने अभियोग में जो आश्चर्यजनक भाषण दिया था उससे इन्होंने

---

* रोजर केससेण्ट एक समय ब्रिटिश सरकार के उपनिवेशों में उच्च पद पर था। दक्षिण अमेरिका के पुटुमायो में एंग्लो-पेरुवियन रबर कम्पनी ने वहाँ के निवासियों पर जो अत्याचार किये थे उनकी जाँच करने के लिये सन् १९१० में इसकी नियुक्ति की गयी थी और उसकी रिपोर्ट से बड़ी सनसनी फैली थी। तदनन्तर यह ब्रिटिश साम्राज्य का घोर शत्रु बन गया। गत महायुद्ध में भाग न लेने के लिये उसने अपने आयरिश भाइयों से अनुरोध किया। नवम्बर १९१४ में वह बर्लिन गया और वहाँ जर्मन

समझा कि एक परतन्त्र जाति के भाव कैसे होने चाहियें? आयर्लैण्ड में जो विद्रोह हुआ, उसकी विफलता ने भी इन्हें अपनी ओर आकर्षित किया, क्योंकि जो निश्चित विफलता पर हँसता हुआ संसार के सम्मुख यह घोषणा करता है कि एक राष्ट्र की अजेय आत्मा को कोई भी शारीरिक शक्ति पद-दलित नहीं कर सकती, वह सच्चा साहसी नहीं था, तो क्या था?

उन दिनों ये ही इनके भाव थे। परन्तु नयी पुस्तकों के अध्ययन से इनके मस्तिष्क में साम्यवादी विचारों की पुनरुत्पत्ति होने लगी थी। पर वे भाव अस्पष्ट थे, वैज्ञानिक न होकर दयापूर्ण और काल्पनिक अधिक थे। युद्धकाल में तथा उसके अनन्तर भी इन्हें बर्ट्रेण्ड रसल* के लेख तथा ग्रन्थ बहुत पसन्द आते थे।

---

सरकार के साथ ब्रिटिश-विरोधिनी संधि की। आयर्लैण्ड में सन् १६१६ के ईस्टर सप्ताह में विद्रोह की योजना की। १२ अप्रैल को जर्मनी से गोलाबारूद भर कर आयर्लैण्ड के किनारे उतरा। जहाज और वह स्वयं दोनों पकड़े गये। 'राज्य के शत्रु' होने का दोषारोपण उस पर किया गया तथा ३ अगस्त को उसे प्राण-दण्ड दिया गया।

*लार्ड-पद त्याग कर समाजवाद का प्रचारक अंग्रेज अध्यापक एवं समर्थ लेखक प्रथम महायुद्ध में युद्धनीतियों का विरोध करने के लिये इसे दण्ड मिला था।

सं० १९७६ (सन् १९१९) में पंजाब में जलियाँवाला बाग आदि के हत्याकाण्ड की जाँच के लिये कांग्रेस ने जो उपसमिति बनाई थी उसके यह भी सदस्य बने। देशबन्धुदास जी ने अमृतसर का भाग मुख्यतया अपनी ओर लिया। उनकी सहायतार्थ ये नियुक्त किये गये थे। इन्हें उनके साथ और उनकी आधीनता में कार्य करने का यह प्रथमावसर था। वह अनुभव इनके लिये बहुमूल्य था और इससे उनके प्रति इनका आदर बढ़ा। जलियाँ वाला बाग़ से और उस भयंकर गली से, जिसमें लोगों को पेट के बल रेंगाया गया था, सम्बन्ध रखने वाले बयान जो कालान्तर में कांग्रेस जाँच रिपोर्ट में छपे थे, इनके सामने लिये गये थे। इन्होंने कई बार स्वयं जाकर उस बाग़ को देखा था और उसकी प्रत्येक वस्तु की जाँच बड़े ध्यान से की थी।

पंजाब जाँच के समय में इन्हें गाँधी जी को बहुत कुछ समझने का अवसर मिला। अनेकों बार उनके प्रस्ताव समिति को विचित्र जान पड़ते थे और समिति उन्हें पसन्द नहीं करती थी। किन्तु प्रायः सदैव वह अपनी युक्तियों से समिति को समझा लिया करते थे और वह उन्हें स्वीकार कर लिया करती थी। तथा बाद की घटनाओं से ज्ञात हुआ कि उनकी सम्मति में दूरदर्शिता थी। तभी से गाँधी जी की राजनीतिक अन्तर्दृष्टि में इनकी श्रद्धा बढ़ती गयी।

पंजाब की दुर्घटनाओं व उनकी जाँच का इनके पिता जी पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा और जैसा कि वह अपनी पुरानी

नरम नीति से हटते आ रहे थे अब उन्हें उससे और असन्तोष हुआ जिसके फल स्वरूप नरम दल के तत्कालीन 'लीडर' समाचार-पत्र से सन्तोष न होने पर उन्होंने 'इण्डिपेन्डेण्ट' नामक दैनिक पत्र प्रयाग से ही निकाला। यद्यपि इस पत्र को पर्याप्त सफलता मिली किन्तु इसका प्रबन्ध अच्छा न था। जिसका उत्तरदायित्व संचालकों, सम्पादक, प्रबन्धकादि सभी पर था। जवाहरलाल जी भी एक संचालक थे किन्तु इसका इन्हें तनिक भी अनुभव न था और उसके सुधार की चिन्ता से थे अहर्निश खिन्न रहते थे। अन्त में यह पत्र सन् १६२३ में समाप्त हो गया जिसका प्रधान कारण इन पिता-पुत्रों का बाहर रहना या जेल में रहना था। समाचार-पत्र के स्वामित्व के इस अनुभव ने इन्हें इतना भयभीत कर दिया कि उसके पश्चात् इन्होंने किसी भी पत्र का संचालक बनने का उत्तरदायित्व चिरकाल तक नहीं लिया।

पञ्चमाध्याय—

## कृषक-सम्पर्क

सं० १९७७ (सन् १९२०) तक ये कारखानों या खेतों में कार्य करने वाले श्रमिकों व कृषकों की दशा से सर्वथा अनभिज्ञ थे और इनका राजनीतिक दृष्टिकोण मध्यमवर्गीयों के समान था उस समय (और बहुत कुछ अब भी) मध्यम वर्ग के लोगों की राजनीति मौखिक थी। तथापि ये इतना तो जानते ही थे कि कृषकों में अत्यधिक निर्धनता है और उनके दुःख भयंकर हैं। और ये सोचते थे कि राजनीतिक दृष्टि से भारत स्वतन्त्र हो जाये तो उसका प्रथम लक्ष्य इस निर्धनता की समस्या का समाधान होगा। परन्तु इन्हें प्रथम साधन तो राजनीतिक स्वतन्त्रता ही दिखायी दी, जिसमें मध्यमवर्ग की प्रधानता अवश्यम्भावी थी।

गाँधी जी के चम्पारन (बिहार) और खेड़ा (गुजरात) के कृषक-आन्दोलन के अनन्तर कृषकों के प्रश्न पर ये अधिक ध्यान देने लगे। तथापि इनका ध्यान राजनीतिक बातों में एवं असहयोग के आगमन में लग रहा था जिसकी चर्चा से राजनीतिक वातावरण गुंजायमान हो रहा था।

उन्हीं दिनों एक नयी बात ने इनकी अभिरुचि अपनी ओर आकर्षित की जो कालान्तर में जीवन में महत्त्वपूर्ण बन गयी। ये बिना किसी इच्छा के एक विचित्र रीति से कृषकों के सम्पर्क में आ गये।

इनकी माता जी व धर्मपत्नी अस्वस्थ थीं। मई १९२० में ये उन्हें मसूरी ले गये। इनके पिता जी उस समय एक बड़े राज्य के मामले में व्यस्त थे जिसमें दूसरी ओर के वकील देशबन्धुदास थे। ये सब मसूरी के सेवाय होटल में ठहरे थे वहीं अफ़गान-प्रतिनिधि भी ठहरे हुए थे। उन दिनों अफ़गान और ब्रिटिश राज-प्रतिनिधियों के मध्य मसूरी में सन्धि-चर्चा चल रही थी (यह सन् १९१९ में हुए छोटे अफ़गान युद्ध के पश्चात् की बात है जब कि अमानुल्ला सिंहासनारूढ़ा हुआ था)। किन्तु ये एक ओर ही रहते थे, भोजन भी अकेले करते थे और किसी से मिलते-जुलते न थे। इन्हें उनमें कोई विशेष रुचि न थी और मई मास में इन्होंने उस प्रतिनिधि-मण्डल के एक भी सदस्य को नहीं देखा। और यदि देखा भी हो तो किसी को पहचानते न थे। किन्तु एक दिन एकाएक सायंकाल पुलिस सुपरिन्टेन्डेण्ट वहाँ स्थानीय सरकार का पत्र लेकर आये जिसमें इनसे यह वचन मांगा गया था कि ये अफ़गान-प्रतिनिधि मण्डल से कोई सम्बन्ध न रखें। इनको यह एक अत्यन्त विचित्र बात जान पड़ी। यद्यपि इन्होंने उन प्रतिनिधियों को कभी देखा भी न था और इस बात को पुलिस सुपरिन्टेन्डेण्ड भी भलीभाँति

जानते थे तथापि ऐसा वचन देना इनके स्वभाव के प्रतिकूल था और इन्होंने ऐसा कह भी दिया। सुपरिन्टेन्डेण्ट ने इन्हें (डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट) प्रान्तीय न्यायाधीश से मिलने के लिये कहा और ये मिले भी। किन्तु क्योंकि ये बराबर यह कहते रहे कि "मैं ऐसा वचन नहीं दे सकता" इन्हें मसूरी से चले जाने का आदेश मिला। जिसमें कहा गया था कि "२४ घण्टे के अन्दर देहरादून प्रान्त के बाहर चले जाओ।" इसके ये अर्थ थे कि ये कुछ ही घण्टों में मसूरी छोड़ दें। यह इन्हें अच्छा तो नहीं लगा। किन्तु उस समय इन्हें उस आदेश को ठुकराना उचित नहीं प्रतीत हुआ। उस समय सविनय भंग तो था नहीं अतः ये मसूरी से चल दिये।

इनके पिता जी ने सुपरिचित युक्त-प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर सर हरकोर्ट को मित्र-भाव से एक पत्र लिखा—"मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसा निरर्थक आदेश आपने न दिया होगा; यह शिमला के किसी मनचले अधिकारी की कार्यवाही प्रतीत होती है।" सर हरकोर्ट ने उत्तर दिया—"आदेश में एसी कोई बात नहीं है जिसके मानने से जवाहरलाल की प्रतिष्ठा में कोई अन्तर आता।" उत्तर में इनके पिताजी ने उनसे अपना मतभेद प्रकट किया और उन्हें सूचित कर दिया कि "यद्यपि जवाहरलाल का इच्छा-पूर्वक आदेशोल्लंघन लक्ष्य नहीं है पर यदि उसकी माता या पत्नी के स्वास्थ्यार्थ आवश्यक होगा तो वह मसूरी अवश्य जायगा।" और ऐसा हुआ भी। इनकी माताजी का स्वास्थ्य बहुत

बिगड़ गया और दशा शोचनीय हो गई तब ये दोनों पिता-पुत्र मसूरी के लिए चल पड़े। उसके ठीक पहिले इन्हें उस आदेश के रद्द कर दिये जाने का तार मिला।

दूसरे दिन प्रातः मसूरी पहुंचने पर सर्व प्रथम जो व्यक्ति इन्हें होटल के आँगन में दिखा वह था एक अफ़ग़ान जो जवाहरलाल की छोटी पुत्री को गोद में लिए हुए था। किंचित् कालान्तर इन्हें विदित हुआ कि वह अफ़ग़ानिस्तान का एक मंत्री और प्रतिनिधि-मण्डल का एक सदस्य था। तत्पश्चात् इन्हें ज्ञात हुआ कि मसूरी से इनके निष्कासन के समाचार को पत्रों में देखते ही उन प्रतिनिधियों का ध्यान इनकी ओर इतना आकृष्ट हुआ कि उनके प्रधान प्रतिदिन फूल और फलों की एक डलिया इनकी माता जी को भेजा करते।

तदुपरान्त ये और इनके पिता जी प्रतिनिधि मण्डल के एक दो सदस्यों से मिले भी और उन्होंने इन्हें अफ़ग़ानिस्तान आने का प्रेमपूर्वक निमन्त्रण दिया था किन्तु खेद है कि ये उसका लाभ न उठा सके। और अब विदित नहीं कि वहाँ के नवीन शासन में वह निमन्त्रण स्थित रहा भी है या नहीं।

मसूरी-निर्वासनानन्तर इन्हें २ सप्ताह प्रयाग में रहना पड़ा था और तभी ये कृषक-आन्दोलन में अनायास फंस गये और शनैः २ अधिक फंसते चले गये। जिसका इनके विचारों और दृष्टिकोणों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। यदा-कदा इनके हृदय में यह विचार उठा है कि यदि ये न तो मसूरी से निर्वासित होते

में ठहरते अथवा उन्हीं दिनों कोई और कार्य होता होता। बहुत संभव है कि ये कृषकों की ओर तो आगे पीछे, आकृष्ट हुए होते, परन्तु इनका उन तक पहुंचने का साधन और अतएव उसका प्रभाव कुछ और ही होता।

संभवतः सं० १९७७ सन् १९२० जून, में बाबा रामचन्द के नेतृत्व में लगभग २०० कृषक प्रतापगढ़ प्रान्त के ग्रामों से ५० मील पदाति चलकर अपने दुःख व कष्टों की ओर राजनीतिक पुरुषों का ध्यान आकर्षित करने के लिए आये, ये कुछ मित्रों के साथ उनसे मिलने गये। उन कृषकों ने इन्हें बताया कि किस प्रकार तालुकेदार बलात् अत्याचार-पूर्वक उगाही करते हैं कैसा उनका अमानुषिक व्यवहार है और कैसी उनकी असह्य दशा हो गई है। उन्होंने इनसे प्रार्थना की कि ये उनके साथ जाकर उनकी दशा की जाँच करें साथ ही तालुकेदारों के भावी प्रकोप से रक्षा भी करें। क्योंकि उन्हें भय था कि उनके प्रयाग आने से वे लोग अत्यन्त कुपित होंगे और उन्हें दारुण यातनायें देंगे। वे इनकी अस्वीकृति को मानने के लिये प्रस्तुत न हुए और इनके पीछे पड़ गये। अन्त में जवाहरलाल जी ने उन्हें वचन दिया—"एक-दो दिन में मैं अवश्य आऊँगा।"

ये कुछ साथियों सहित वहाँ पहुंचे। कोई ३ दिन वहाँ ये लोग रहे। वे गाँव रेलवे लाइन व पक्की सड़कों से बहुत दूर थे। उस समय इन्होंने समझा कि सारे देहाती क्षेत्र में किस प्रकार

का उत्साह और उमंग है। तनिक मौखिक समाचार पहुंचने पर ही सहस्त्रों की संख्या में लोग एकत्रित हो जाते। एक गाँव से दूसरे, दूसरे से तीसरे, इस प्रकार सब गाँवों में संदेशा पहुंच जाता और देखते २ सारे गाँव भर के वालक-वृद्ध सभी पुरुष खेतों में दूर २ तक सभास्थल में आते हुए दिखायी देते और "सीताराम" सीता···रा···आ···आ···म की ध्वनि आकाश में गुञ्जायमान हो जाती। जोकि बिगुल का काम करती और उस ध्वनि प्रतिध्वनि को सुन २ कर लोग दौड़ते चले आते।

उन ग्रामीण जनों की इन पर अपार श्रद्धा प्रकट होती थी और दिखती थी इनके द्वारा उद्देश्य-पूर्ण की आशा। इस दृश्य को देखकर ये अत्यन्त प्रभावित हुए। साथ ही भारतीयों की इस असह्य अवस्था और उसके दूर करने सम्बन्धी अपनी असमर्थता का अनुभव करके इनके दुःख व लज्जा का पारावार न रहा। और इस नवीन उत्तरदायित्व की कल्पना से ही इनका हृदय काँप गया।

यद्यपि यह अवस्था चिरकाल से चली आ रही थी और ये यातनायें व दुःख कोई नये न थे और न ही गाँधी जी के असहयोग-आन्दोलन का प्रभाव उन पर पड़ा था फिर क्या कारण था कि इन प्रतापगढ़, रायबरेली और फैजाबाद के प्रान्तों में इतना असन्तोष, जागृति व उत्साह था। इस का एक मुख्य कारण स्वयं जवाहरलाल जी ने जो समझा वह था बाबा रामचन्द्र का प्रचार। यह एक महाराष्ट्रीय विलक्षण व्यक्ति था जो तुलसीदास रामायण

गाँव २ गाता फिरता था। साथ ही कृषकों के कष्टों व दुःखों की गाथा भी सुनाता और इस प्रकार उन प्रान्तों में उसने दुःख-मुक्त होने की भावना भर दी थी।

आश्चर्य की बात तो यह है कि नागरिकों को इस आन्दोलन का पता तक न था। किसी पत्र में एतद्विषयक एक पंक्ति भी न छपती थी।

जवाहरलाल जी ने इस बात का और अधिक अनुभव किया कि "हम अपने लोगों से किस प्रकार दूर पड़े हुए हैं और उनसे पृथक् अपने छोटे से संसार में किस प्रकार रहते व कार्य करते हैं।"

गाँवों में उस जून के मास में असहनीय आतप व लू में पैदल चलना इन जैसे लन्दन से लौटे हुए व्यक्ति के लिये असम्भव-सा था। किन्तु धन्य है, साहस और कार्य-संलग्नता में इन्हें इन कष्टों की कुछ भी चिन्ता न थी। सिर पर हैट भी न रहता था। एक छोटा तौलिया लपेट लिया करते और दिन भर खुले धूप में घूमा करते। प्रयाग लौटने पर अपने मुख-वर्ण को देख कर इन्होंने जाना कि यह यात्रा कैसी रही। इनका गौर-वर्ण पक्का हो गया था। किन्तु इससे इन्हें प्रसन्नता व सन्तोष था क्योंकि इनके अन्दर जो भय था कि स्यात् ये धूप को सह न सकें सो दूर हो गया और इन्हें विश्वास हो गया कि ये घोर शीत व असह्य आतप दोनों को सह सकते हैं। इससे इन्हें अपने कार्यों में व जेल-जीवन व्यतीत करने में अत्यंत सहायता मिली। इनके शरीर के इतना पुष्ट होने का प्रधान कारण था,

इनका निरंतर व्यायाम; जो कि इन्होंने अपने पिता जी से सीखा था। इनके पिता जी अपने अन्तिम दिनों तक व्यायाम करते रहे थे। उनके बाल श्वेत हो गये, मुख पर झुर्रियाँ पड़ गयीं किंतु शरीर २० वर्षीय नवयुवक का-सा ही बना रहा।

इस अल्पकालिक ग्राम-यात्रा ने जवाहरलाल जी के हृदय-पटल पर जो चित्र अंकित किया वह अमिट रहा। तभी से सभाओं में बोलने का इन्हें अभ्यास हुआ और देश भाषा में बोलने में जो संकोच होता था वह भी दूर हो गया।

बीच में ये मसूरी गये। वहाँ से लौटने के पश्चात् सारे सं० १९७८ (सन् १९२१) में ये देहातों में आते जाते रहे और इनका कार्य-क्षेत्र अब सारा संयुक्त-प्रदेश बन गया था।
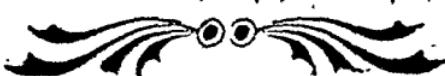
षष्ठाध्याय—

## असहयोग-आन्दोलन

पंजाब-हत्याकाण्ड से देश में उग्र भावना बड़े वेग से विस्तार पा रही थी। अधिकारियों ने दमन द्वारा जनता को और अधिक जागृत कर दिया था। इसी समय महात्मा गाँधी ने कांग्रेस के सम्मुख असहयोग-आन्दोलन का प्रस्ताव रखा। पहले तो इसका घोर विरोध किया गया परन्तु अंत में इसे स्वीकार कर लिया गया। उस समय गत महायुद्ध के उपरांत जर्मनी के साथी टर्की की स्वतंत्रता छीन ली गई थी। टर्की का शासक संसार भर के मुसलमानों का धार्मिक शिरोमणि, खलीफा कहलाता था। किन्तु राज्य छिन जाने पर वह पद उसका निरर्थक हो गया अतः संसार भर के विशेषतः भारत के मुसलमानों में बड़ी व्याकुलता फैल रही थी, खिलाफत का नाश उन्हें इस्लाम का नाश लगता था। अली-बन्धु उनके नेता थे। ये लोग इंगलैण्ड से बहुत रुष्ट थे। खिलाफत के कार्य-कर्त्ताओं की एक सभा देहली में हुई गाँधी जी भी उसमें सम्मिलित हुए और उन्होंने सरकार के विरुद्ध अहिंसात्मक युद्ध करने की सम्मति दी। अर्थात् सरकार से असहयोग किया जाय जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार खिलाफत व असहयोग-आन्दोलन साथ २ चलने लगे। खिलाफत को बहुत प्रधानता दी गयी थी। फलतः कितने ही मौलवी और मुसलमानों के धार्मिक नेताओं ने इस आन्दोलन में भाग लिया था। उन्होंने इस आन्दोलन पर निश्चित धार्मिकता (साम्प्रदायिकता) का रंग चढ़ा दिया था और मुसलमान साधारणतया उससे बहुत प्रभावित हुए थे। बहुत से पश्चिमी रंग में रंगे हुए मुसलमान भी, जिनका कोई विशेष झुकाव धर्म की ओर नहीं था, दाढ़ी रखने और शरीयत के अन्य आदेशों का पालन करने लगे थे। अली-बंधुओं ने, जो स्वयं धार्मिक वृत्ति के थे और इसी प्रकार गाँधी जी ने भी, इस भावना को और बल दिया।

राजनीति में, क्या आर्य (हिंदू) और क्या मुसलमान दोनों ओर, धार्मिकता की इस बढ़ती से कभी २ जवाहरलाल जी खिन्न हो जाते थे। इन्हें वह तनिक भी पसंद न थी। मौलवी, मौलाना और स्वामी तथा ऐसे ही अन्य लोग जो कुछ अपने भाषणों में कहते उसका अधिकांश इन्हें अत्यन्त हानिकारक प्रतीत होता था। उनका सारा इतिहास, सम्पूर्ण समाज-शास्त्र एवं अर्थ-शास्त्र इन्हें दोषपूर्ण दिखाई देता था। प्रत्येक वस्तु को धार्मिक रंग देना इनके विचार में स्पष्ट विचार का बाधक था। कुछ-कुछ तो गाँधी जी के शब्द प्रयोग भी इनको प्रिय न लगते थे यथा 'रामराज्य', जिसे गाँधी जी पुनः प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। किन्तु उस समय ये प्रथम श्रेणी के राजनीतिज्ञों में न थे।

उसमें बाधा देने की शक्ति इनमें न थी और ये इस विचार से सन्तोष कर लिया करते थे कि गाँधी जी ने उनका प्रयोग सर्व साधारण के शीघ्र बोधार्थ किया है। क्योंकि इन शब्दों को सब लोग जानते हैं।

किन्तु ये इस झंझट में अधिक नहीं पड़ते थे। और न उस समय इसके लिए अवकाश था। आन्दोलन की प्रगति तीव्र थी। इन तुच्छ बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता न थी। विशाल आन्दोलन में नाना प्रकार के लोग रहते हैं और जब तक उद्देश्य ठीक है इन भंवरों और चक्करों से कुछ हानि नहीं होती। पुनः ये समझते थे कि गान्धी जी एक महान् और अद्वितीय पुरुष तथा तेजस्वी नेता हैं अतएव उन पर इनकी श्रद्धा थी और इन्होंने उन्हें अपनी ओर से सब कुछ करने का अधिकार दे दिया था। ये प्रायः आपस में गाँधी जी की प्रमत्त-प्रलापवत् व विचित्रता-युक्त बातों की चर्चा किया करते थे और हास्य में कहा करते थे कि जब स्वराज्य आ जाएगा तब इन प्रलापों को इस प्रकार आगे न चलने देंगे।

धर्म के बाह्य आचार कदापि इनके हृदय में स्थान न पा सके। इन्हें तथाकथित धार्मिकों द्वारा जनता का चूसा जाना अत्यन्त अप्रिय था। तथापि इनका व्यवहार धर्म के प्रति नम्र था। बालकाल से लेकर किसी भी समय की अपेक्षा १९२१ में इनका मानसिक झुकाव धर्म की ओर अधिक हुआ था किन्तु पुनरपि ये उसके अत्यन्त निकट नहीं पहुंचे थे।

इनके हृदय में जिस बात के प्रति आदर भाव था वह था आन्दोलन का नैतिक तथा सदाचार-सम्बन्धी पहलू—एवं सत्याग्रह। इन्होंने अहिंसा के सिद्धान्त को पूर्णरूपेण अथवा सदा के लिये नहीं मान लिया था। परन्तु वह इन्हें अधिकाधिक अपनी ओर आकर्षित कर रहा था और इनको यह विश्वास होता जाता था कि भारत की जैसी परिस्थिति बन गयी है, हमारी जैसी परम्परा और जैसे संस्कार हैं उन्हें सम्मुख रखते हुए हमारे लिए यही उचित नीति है। राजनीति को आध्यात्मिकता-संकीर्ण धार्मिकता अर्थ में नहीं--का रूप देना, इन्हें एक सुन्दर समन्वय ज्ञात हुआ। निस्सन्देह एक उच्च ध्येय की प्राप्ति के साधन भी वैसे ही उच्च होने चाहिएँ। इनके विचार में यह एक अच्छा नीति-सिद्धान्त ही नहीं अपितु निर्भ्रान्त व्यावहारिक राजनीति भी थी; क्यों कि जो साधन उत्तम नहीं होते वे प्रायः उद्देश्य को ही विफल बना देते हैं और नयी समस्यायें और नयी बाधाएं उत्पन्न कर देते हैं।

असहयोग आन्दोलन ने इन्हें वह वस्तु प्रदान की जिसकी इन्हें इच्छा थी—राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का ध्येय, निम्नश्रेणी के लोगों के शोषण का अन्त कर देना (जैसा इन्होंने उस समय समझा था) और ऐसे साधन जो इनके नैतिक भावों के अनुकूल थे और जिन्होंने इन्हें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का भान कराया। यह वैयक्तिक सन्तोष इनके अन्दर इस मात्रा में उत्पन्न हुआ कि असफलता की आशंका की भी ये अधिक चिन्ता न करते थे,

क्योंकि, ऐसी असफलता तो अल्पकालिक ही हो सकती थी। भगवद्गीता के आध्यात्मिक भाव को न तो इन्होंने समझा था और न उसकी ओर इनका झुकाव ही हुआ था तथापि उन श्लोकों का पढ़ना पसन्द करते थे जो सायंकाल गान्धी जी के आश्रम में प्रार्थना के समय पढ़े जाते थे जिनमें बतलाया गया है कि मनुष्य को कैसा होना चाहिए शान्त, स्थिर, गंभीर, अचल, निष्काम भाव से कर्म करने वाला और फल के विषय में अनासक्त। ये स्वयं बहुत शान्त स्वभाव के या अनासक्त नहीं हैं अतएव स्यात् यह आदर्श इन्हें अच्छा लगा होगा। ऐसा इनका अपना विचार है।

सप्तमाध्याय—

# प्रथम कारावास

ये आन्दोलन में तन मन से लग गये। अपने अन्य कार्य-सम्बन्ध पुराने मित्र, पुस्तकें और पत्र तक (उस सीमा तक कि जितना प्रचलित कार्य से सम्बन्ध था—के अतिरिक्त) छोड़ दिये। तब तक प्रचलित पुस्तकों का स्वाध्याय-क्रम कुछ २ चल रहा था और संसार की घटनाओं के जानने का प्रयत्न भी करते थे। किन्तु अब एतदर्थ अवकाश ही कहाँ था यद्यपि परिवार का मोह प्रबल था तथापि अपने परिवार, पत्नी, पुत्री और सब को प्रायः भूल से गए थे। चिरकालान्तर इन्हें ज्ञात हुआ कि उन दिनों ये उनकी कितनी कठिनताओं, कितने कष्टों का कारण बन गए थे एवं इनकी पत्नी ने इनके प्रति कितने विलक्षण धीरज और सहनशीलता का परिचय दिया था। कार्यालय व समिति के अधिवेशन और जन-समूह ही मानों इनका घर, परिवार बन गया था इन्हें धूल व विशाल जनता के धक्कम-धक्कों में आनन्दानुभूति होने लगी यद्यपि उनमें अनुशासनाभाव के कारण कभी २ ये उत्तेजित हो जाते थे। तदन्तर तो कभी २ इन्हें विरोधी एवं क्रुद्ध जन-समूहों के सम्मुख जाना पड़ा है जिनकी उग्रता

इतनी बढ़ी हुई थी कि एक चिनगारी भी उन्हें प्रचण्ड दावानल के रूप में परिवर्तित कर सकती थी परन्तु आरम्भ के अनुभव तथा तदुत्पन्न आत्मविश्वास से इन्हें बड़ी सहायता मिली। ये सदैव विश्वास-पूर्वक सीधे जनता में प्रविष्ट हो जाते। और अभी तक तो उसने इनके प्रति सद्व्यवहार एवं गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है। किन्तु जनसमूह की गति के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जासकता, सम्भव है भविष्य में कुछ और ही अनुभव मिलें।

ये समूह को अपना समझते और वह इन्हें अपनाता, किन्तु उसमें ये अपने आपको भुला नहीं देते थे। सदा पृथक् ही समझते रहे। अपनी पृथक् मानसिक स्थिति से उसे समीक्षक दृष्टि से देखते थे। इन्हें स्वयं बड़ा आश्चर्य होता था कि ये अपने परितः एकत्रित इन सहस्रों मनुष्यों से प्रत्येक बात में —स्वभावों में, इच्छाओं में, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि-कोणों में, बहुत भिन्न होते हुए भी इन लोगों की सदिच्छा और विश्वास कैसे प्राप्त कर सके? क्या लम्बी चौड़ी बातें बना-बनाकर सदिच्छा प्राप्त कर रहे हैं? इन्होंने सदा सत्य व खरी बातें कहने का प्रयत्न किया कभी २ कठोरता से भी बातें की तथा उनके अनेकों प्रिय विश्वासों एवं कुरीतियों की आलोचना की तो भी इनकी सब बातों को वे सह लेते थे। किन्तु इनका यह विचार रहा है कि उनका इन पर प्रेम, जैसे ये हैं उसके लिये नहीं अपितु इनके सम्बन्ध में उन्होंने जो मधुर कल्पना कर ली

थी उसके कारण था। असत्य कल्पना कितने दिनों तक टिकी रह सकती थी? और वह टिकी रहने भी क्यों दी जाय? जब उनकी यह कल्पना भ्रान्त सिद्ध होगी और वास्तविकता का ज्ञान होगा तब क्या होगा? उन निरभिमान, आडम्बर-रहित सरल जनों को देखकर इनके हृदय में असीम करुणा तथा दुःख का भाव पैदा होता था।

सभाओं में धाराप्रवाह भाषण देते जो प्रायः बहुत ओजस्वी होते थे। आन्दोलन अपनी पूर्ण तीव्रता पर था। इन्हें ग्रीष्मकाल में राजद्रोह का अभियोग चलाने की धमकी दी गई किन्तु ऐसी कोई कार्यवाही नहीं की गयी। उस समय युवराज भारत आने वाले थे। उनके स्वागतार्थ की जाने वाली समस्त कार्यवाहियों का वहिष्कार करने का कांग्रेस ने निश्चय किया। दिसम्बर के प्रारम्भ में ही संयुक्त-प्रदेश में भी युवराजागमन के कुछ ही दिन पूर्व सामूहिक धर-पकड़ आरम्भ हुई।

एक दिन ये प्रयाग के कांग्रेस-कार्यालय में किञ्चित् विलम्ब तक कुछ शेष कार्य निपटा रहे थे इतने में एक क्लर्क कुछ उत्तेजित-सा आया और सूचना दी कि पुलिस तलाशी का वारंट लेकर आयी है। ये भी कुछ उत्तेजित हुए क्योंकि यह पहला ही इस प्रकार का अवसर था—किन्तु दृढ़, शान्त और निश्चित प्रतीत होने तथा पुलिस के आने जाने से प्रभावित न होने की अभिलाषा प्रबल थी। अतः इन्होंने एक क्लर्क से पुलिस अफसर के साथ रहने का आदेश दे शेष क्लर्कों को सदा की भाँति

अपना कार्य करते रहने की आज्ञा दी और पुलिस की ओर ध्यान न देने के लिये कहा। किञ्चित् कालानन्तर इनके एक मित्र व साथी कार्यकर्त्ता जो कार्यालय के बाहर ही धर लिये गये थे एक पुलिस-मैन के साथ इनके पास विदा लेने आये। इन सभी घटनाओं को साधारण समझने के भाव ने इन में अभिमान का सा रूप धारण कर लिया था। इन्होंने अपने सहकारी के साथ रूक्षता का व्यवहार किया। उनसे व पुलिस मैन से कहा कि 'जब तक चिट्ठी पूरी कर लूँ तब तक रुके रहें'। शीघ्र ही नगर में और लोगों के धर पकड़ने की सूचना मिली और ये घर के समाचार जानने के लिये वहाँ गये। जहाँ पुलिस इनके उस विशाल भवन के एक भाग की तलाशी ले रही थी।

इनके पिता पं० मोतीलाल जी और ये दोनों पकड़ लिये गये। इसप्रकार ये सं० १९७८ (सन् १९२१ ई०) में ३२ वर्ष की आयु में प्रथम वार कारागार में भेज दिये गये। दोनों पिता-पुत्रों को पृथक् २ न्यायालयों ने छः छः मास का कारावास दिया था। अभियोग-सिद्धि क्या थी; नाटकों का दृश्य था। इन्होंने उसमें कोई भाग नहीं लिया था। पं० मोतीलाल जी को अनियमित संस्था का सदस्य होने के लिये अपराधी कहा गया और इन पर हड़ताल के लिये सूचना-विज्ञापन-वितरण का आरोप था। उस समय जनवरी १९२२ तक अनुमानतः लगभग ३० सहस्र मनुष्यों को असहयोग के सम्बन्ध में दण्ड मिले। किन्तु इस सत्याग्रह युद्ध के संचालक महात्मा गाँधी बाहर थे

जो प्रति दिन लोगों को अपने आदेश देते रहते थे। जिनसे लोगों को स्फूर्ति मिलती और अनेकों अवाञ्छनीय बातें होने से बच जाती थीं। सरकार ने उन्हें अभी तक इस लिये नहीं पकड़ा था कि उसे भय था कि कहीं भारतीय सेना व पुलिस न बिगड़ उठे।

अचानक १६२२ की जनवरी में सारा दृश्य परिवर्तित हो गया। इन्होंने कारागार में ही आश्चर्य व भय के साथ सुना कि गान्धी जी ने सविनय भंग-युद्ध रोक दिया और सत्याग्रह स्थगित कर दिया है। कारण यह था कि चोरी-चौरा नामक गाँव में लोगों ने प्रतिक्रिया-स्वरूप पुलिस स्टेशन में आग लगा दी थी और उसमें लगभग आधे दर्जन पुलिस वालों को जला डाला था।

जब इन्हें ज्ञात हुआ कि ऐसे समय पर जब कि हम अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाते जा रहे थे और सभी मोर्चों पर आगे बढ़ रहे थे हमारा युद्ध स्थगित कर दिया गया है तब ये बहुत अप्रसन्न हुए किन्तु कारावासियों की निराशा व अप्रसन्नता से हो ही क्या सकता था। सरकार की चढ़ बनी उसने कुछ दिन पश्चात् गाँधी जी को भी पकड़ लिया और दीर्घ कारावास का दण्ड दिया।

इस विषय के इनके विचार इन्हीं के शब्दानुवाद में निम्न हैं—

"..........आन्दोलन के स्थगित किये जाने से जो कष्ट हुआ उससे भी अधिक कष्ट स्थगित करने के जो कारण बताये गये उनसे तथा उन कारणों से हुआ। हो सकता है कि चोरी-चौरा

एक खेद जनक घटना हो, वह थी भी खेद-जनक और अहिंसात्मक आन्दोलन के भाव के सर्वथा विरुद्ध। किन्तु क्या हमारी स्वतन्त्रता का राष्ट्रीय युद्ध कम से कम कुछ समय के लिये केवल इसलिये बन्द हो जाया करेगा कि कहीं सुदूर के किसी कोने में पड़े गाँव में कृषकों के उत्तेजित समूह ने कोई हिंसात्मक कार्य कर डाला। यदि इस प्रकार अचानक घटित घटनाओं का यही अवश्यम्भावी परिणाम है तब तो निस्सन्देह अहिंसात्मक-युद्ध-शास्त्र और उसके मूलसिद्धान्त में कुछ न्यूनता है क्योंकि इसी प्रकार की किसी न किसी अनिच्छित घटना के न होने का विश्वास दिलाना असम्भव प्रतीत होता था। क्या हमारे लिये यह अनिवार्य है कि स्वतन्त्रता के युद्ध में अग्रसर होने से पूर्व हम भारतवर्ष के ३० करोड़ (४० करोड़) से भी अधिक लोगों को अहिंसात्मक युद्ध का उद्देश्य और आचरण सिखा दें। और यही हममें ऐसे कितने हैं कि पुलिस से अत्यधिक उत्तेजना मिलने पर भी हम लोग पूर्णरूपेण शान्त रह सकेंगे ? किन्तु यदि हम इसमें सफल भी हो जायें तो जो अनेकों उत्तेजना उत्पन्न करने वाले छद्मवेशी विरोधी आदि हमारे आन्दोलन में आ घुसते हैं और या तो स्वयं ही कोई हत्याकाण्ड कर डालते हैं अथवा दूसरों से करा देते हैं, उनका क्या होगा? यदि अहिंसात्मक युद्ध के लिये यही प्रण (शर्त) रहा कि वह तभी चल सकता है जब कहीं कोई तनिक भी हिंसात्मक कार्यवाही न करे तब तो अहिंसात्मक युद्ध सदा असफल ही रहेगा।

हम लोगों ने अहिंसा-प्रणाली को इस हेतु स्वीकार किया था और कांग्रेस ने भी एतदर्थ अपनाया था कि हमें यह विश्वास था कि यह साधन सफलता द्योतक है। गांधी जी ने उसे देश के सम्मुख केवल इसलिये नहीं उपस्थित किया था कि वही अनिवार्य है, अपितु इस लिये कि हमारे लक्ष्य-प्राप्त्यर्थ सब से अधिक उपयुक्त है..........।"

तीन मासानन्तर इन्हें मुक्त कर दिया गया क्यों कि कतिपय अभियोगों के पुनर्विचारक अधिकारियों ने इन्हें निर्दोष पाया। सम्भव है सत्याग्रह स्थगित हो जाने से न्यायाधीशों में न्याय की मूल भावना जागृत हो गयी हो।

मुक्त होते ही ये गांधी जी से मिले जो कि उसके पहले ही साबरमती कारागार में पहुंच गये थे। उनके अभियोग-सिद्धि के समय ये न्यायालय में उपस्थित थे और इन पर गांधी जी के तत्कालीन वक्तव्य का अत्यन्त प्रभाव पड़ा था। और लौटते समय उनके ज्वलंत वाक्यों चमत्कारी भावों की मुद्रा इनके मनों पर अंकित थी।

## पुनः कारावास

प्रयाग लौट आने पर इन्होंने विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार में रुचि ली क्यों कि सत्याग्रह के स्थगित किये जाने पर भी कार्य-क्रम का यह भाग अब भी चालू था। और जिन व्यापारियों ने विदेशी वस्त्र न बेचने के वचन का उल्लंघन किया था पहले तो उन्हें

समझाया और जब न माने तो उनकी दूकानों में धरना देने की आयोजना बनायी। जिससे व्यापारियों ने पुनः वचन दिये और अर्थ-दण्ड भी दिया।

२-३ दिन पश्चात् ये अपने सहकारियों के साथ पुनः पकड़ लिये गये और इन पर २-३ अपराध राज द्रोह सहित लगाये गये। इन्होंने निर्दोषिता प्रमाणित करने के हेतु और साक्षी आदि नहीं दी केवल एक लम्बा वक्तव्य दिया। ३ अपराधों में जिनमें व्यापारियों से बलात् रुपया प्राप्ति तथा उन्हें दबाने के अपराध भी सम्मिलित थे इन्हें दण्ड दिया गया। १ वर्ष ६ मास का कारावास-दण्ड मिला। इस प्रकार छः सप्ताह बाहर रह कर पुनः अपने कारावास के साथियों से लखनऊ जेल में जा मिले।

ये प्रातः काल का समय अपने सायवान (जिसमें ये इनके पिता जी और दो चचेरे भाई थे, जो लगभग २०×१६ फुट था) को भली भाँति स्वच्छ करने एवं धोने, अपने तथा पिता जी के वस्त्र-प्रक्षालन तथा चक्र-चालन (सूत कातना) में व्यतीत किया करते थे। मध्याह्न में प्रारम्भिक सप्ताहों में स्वयं-सेवकों को हिन्दी उर्दू तथा अन्य प्रारम्भिक विषय पढ़ाते थे तथा अपराह्न में वालीवाल खेला करते थे। कुछ दिन पश्चात् पढ़ाना बन्द हो गया क्यों कि स्वयंसेवकों के प्रकोष्ठ में इन्हें जाने से रोक दिया था।

उन्हीं दिनों ये मुक्त कर दिये गये थे और जब दुबारा गये थे तब इनके पिता जी नैनीताल भेज दिये गये थे। और ये

पहले वाले सायबान में न रक्खे जाकर अन्य लोगों के साथ एक प्रकोष्ठ (बैरक) में ही रखे गये थे। जिसमें लगभग ५० थे। ये प्रायः एकान्त-वासार्थ लालायित रहते थे क्योंकि भिन्न २ वृत्तियों के समुदाय में शान्ति कहाँ? ये अपना अधिकतर समय प्रकोष्ठ के बाहर ही व्यतीत किया करते थे।

खुले भाग में लेट कर बादलों को निहारा करते और अनुभव करते कि बादलों के नित नये रङ्ग कितने सुन्दर होते हैं जिसका अनुभव इन्होंने इससे पूर्व स्यात् न किया था। तत्कालीन भावों का वर्णन जो इन्होंने अपनी आत्म-कथा में (अंग्रेजी में) कविता के रूप में किया है उसके श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय कृत निम्न अनुवाद से इनकी काव्य-शक्ति का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है:—

"अहो! मेघ मालाओं का यह,
पल पल रूप पलटना,
कितना मधुर स्वप्न है लेटे-
लेटे इन्हें निरखना!"

इस प्रकार उस निरानन्द नीरस जीवन में भी आनन्द व रस की अनुभूति एवं शान्ति प्राप्त करते थे।

जनवरी १९२३ के अन्तिम दिनों में समस्त राजबन्दियों के साथ ये भी मुक्त कर दिये गये।

———

अष्टमाध्याय—

## सार्वजनिक जीवन

बाहर आने पर कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध होने के कारण संयुक्त-प्रदेश की कांग्रेस कमेटी के मंत्री के नाते ये कांग्रेस को सङ्गटित करने में लग गये क्योंकि वह प्रायः छिन्न-भिन्न हो गयी थी।

उसी समय आप प्रयाग मनुष्यपालयित्री (म्युनिसिपैलिटी) के आश्चर्यजनक रूप से प्रधान निर्वाचित हुए। बात यह थी कि इस निर्वाचन घटना के ४५ मिनट पूर्व तक इनके नाम की चर्चा भी न थी किंतु अंतिम समय कांग्रेस दल ने एकमात्र इनकी निश्चित् सफलता का अनुभव किया। उस वर्ष प्रायः समस्त देश में कांग्रेसी ही इन सभाओं के प्रधान बने।

मनुष्य-पालयित्री के विविध कार्यों में इनकी रुचि बढ़ने लगी और उसमें अधिकाधिक समय लगाने लगे। इसका इन्होंने गूढ़ अध्ययन किया तथा अनेक सुधार योजनायें बनाईं। किंतु वर्तमान नियमों के अंतर्गत बड़ी २ सुधार योजनाओं के लिये अत्यल्प स्थान हैं।

म्यूनिसिपैलिटी-टैक्स के भार को कुछ दिन तक निर्धनों व धनवानों पर बराबर २ डालने के लिये तथा कुछ अन्य सुधार कार्य करने के लिये ये भूमि के मूल्य के आधार पर टैक्स लगाना चाहते थे। किंतु ज्यों ही इन्होंने ऐसा प्रस्ताव उपस्थित किया त्यों ही एक सरकारी अधिकारी (जिला मजिस्ट्रेट) ने विरोध करते हुए कहा कि यह भूम्यधिकार-सम्बंधी बहुत-सी शर्तों व नियमों के विरुद्ध पड़ेगा। यह स्पष्ट है कि ऐसा टैक्स सिविल लाइन के बंगलों के निवासियों को अधिक देना पड़ता किंतु सरकार उस कर को पसंद करती है जिससे व्यापार कुचला जाये। जिससे सब वस्तुओं का—जिनमें खाद्य-पदार्थ भी सम्मिलित हैं—मूल्य बढ़ जाता है। और इसका अत्यधिक प्रभाव निर्धनों पर आकर पड़ता है।

तथापि इस तंत्र को नियमित सुचारु रूप से चलाने का अवसर तो था ही और इन्होंने गत वर्ष पर्याप्त परिश्रम भी किया। दूसरे वर्ष के अंत में इन्होंने म्युनिसिपैलिटी के प्रधान पद से त्याग-पत्र दे दिया था क्योंकि यह राजकीय-नियमों की परवशता के कारण कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं कर पाये जिससे ये उद्विग्न हो गये थे। इन्हीं दिनों ये प्रादेशिक कांग्रेस के अतिरिक्त अखिल भारतीय कांग्रेस के भी मंत्री निर्वाचित हुए। जिससे इनका कार्य इतना बढ़ गया कि इन्हें प्रतिदिन १५-१५ घण्टे तक कार्य करना पड़ता था।

कारागार से बाहर आने पर इन्हें प्रयाग-उच्च न्यायालय (Highcourt) के तत्कालीन प्रधान न्यायाधीश सर ग्रिमवुड मियर्स का एक पत्र मिला जिसके द्वारा माननीय न्यायाधीश ने इन को प्रायः मिलते रहने का निमन्त्रण दिया था। यद्यपि वह प्रयाग में ४ वर्ष से ही थे और उनके सम्मुख जवाहरलाल जी ने केवल एक और अन्तिम अभियोग में ही बहस की थी तथापि किन्हीं कारणों से वे इन से अत्यधिक आकर्षित थे। उनके जैसे अनुभवी न्यायाधीश का भविष्य में इनके उन्नति-पथ पर अग्रसर होने का विचार उचित ही था। और इसी कारण वे इनको अंग्रजों के दृष्टिकोण समझने में अपनी सुसम्मति द्वारा प्रभावित करना चाहते थे।

इनका उनसे अनेक बार मिलन हुआ। किसी न किसी म्युनिसिपल कर पर आपत्ति करने के व्याज से वह इनसे प्रायः मिलने के लिये आया करते थे और अन्य विषयों पर वाद-विवाद किया करते थे। एक बार कौंसिल-प्रवेश के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने इनसे कहा कि देश के सम्मुख सबसे आवश्यक प्रश्न शिक्षा का है। क्या किसी शिक्षा-मन्त्री को, जिसे अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता हो, लाखों मनुष्यों के भाग्य सुधारने का अवसर नहीं है? क्या यह जीवन का महान् अवसर नहीं है? कल्पना कीजिए, कि आप जैसा कोई मनुष्य, जिसमें समझदारी, चरित्र-बल, आदर्श एवं आदर्शों को व्यवहार में लाने की शक्ति हो, प्रान्त की शिक्षा

का उत्तरदायी हो, तो क्या वह अद्भुत कार्य करके नहीं दिखा सकता? उन्होंने कहा, मैं अभी निकट में ही गवर्नर से मिला हूँ, और विश्वास रखिए कि आपको अपनी नीति चलाने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी। किन्तु तत्काल ही कुछ सोच कर उन्होंने कहा कि यद्यपि राजकीय रूप में किसी की ओर से वे कोई बचन तो नहीं दे सकते किन्तु जो प्रस्ताव उन्होंने रखा है वह उनका निज का है।

किन्तु भला जवाहरलाल जी राज मन्त्री बन कर राज्य का साथ देने का विचार कैसे कर सकते थे। इन्हें तो इस विचार से ही घृणा थी। यद्यपि उस समय और तत्पश्चात् भी इन्होंने कुछ ठोस, निश्चित् और रचनात्मक कार्य करने की प्रायः कामना की है। क्योंकि विनाश, आन्दोलन और असहयोग तो मानव-प्राणी की दैनिक प्रवृत्तियाँ नहीं हो सकतीं।

उन दिनों की—कौंसिल-पार्टी व अपरिवर्त्तनवादी—दोनों पार्टियों में से कोई भी इन्हें आकर्षित नहीं कर रही थी। कौंसिल-पार्टी प्रकट रूप से सुधारवाद और विधानवाद की ओर झुक रही थी और उसके विचार में द्वितीय मार्ग अन्धकारपूर्ण था। अपरिवर्तनवादी महात्मा जी के कट्टर अनुयायी माने जाते थे, किन्तु महान् पुरुषों के दूसरे सब अनुयायियों की भाँति वे भी उनके सार को न ग्रहण कर उनके अक्षरानुयायी थे। उनमें सजीवता तथा संचालन-शक्ति का अभाव था और व्यवहार में उनमें से अधिकतर लोग युद्धप्रिय न होकर समाज-सुधारक ही थे।

सार्वजनिक जीवन में नाना संकल्प-विकल्पों के होने पर भी परिवारिक जीवन में इन्हें उन दिनों शान्ति प्राप्त थी। इन्होंने व इनके पिताजी ने दोनों ने वकालत छोड़ दी थी और आय का कोई विशेष साधन न था अतः व्यय में अत्यन्त मितव्ययिता की जाती थी जो कि इनके पिताजी को, उदारचित्त होने के कारण, पसन्द नहीं आती थी। अतः उन्होंने घर पर ही लोगों को वैधानिक सम्मति देकर कुछ अर्थोपार्जन का निश्चय किया और सार्वजनिक कार्यों से अवशिष्ट समय में वह यह कार्य किया करते थे। व्यय के लिए पिताजी पर अवलम्बित रहने के कारण ये बहुत ही दुःख और ग्लानि अनुभव करते थे। वकालत त्यागने के अनन्तर, शेअरों (व्यापारिक संस्थाओं में लगे धन) के डिवीडेण्ड (लाभ) के अतिरिक्त इनकी और कोई निजी आय न थी।

इनका व इनकी धर्मपत्नी का व्यय अधिक न था। इन्हें आश्चर्य व सन्तोष था कि ये इतने अल्प व्यय में अपना कार्य चला लेते हैं। कुछ भी हो धनाभाव के भय ने इन्हें कभी भयभीत नहीं किया और आवश्यकता पड़ने पर पर्याप्त धनोपार्जन कर सकने की अपनी क्षमता पर विश्वास था। तो भी ये वर्तमान दशा से चिंतित थे और ३ वर्ष तक सोचते रहे कि कोई सुलभ उपाय निकल आये। ऐसा कार्य चाहते न थे जिससे सार्वजनिक कार्यों को स्थगित या न्यून करना पड़े। इन्हें बड़ी २ औद्योगिक फर्मों ने आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त लाभदायक कार्य सुझाये किन्तु इनके विचार में उतना धन वे इन्हें इनके नाम

से लाभ उठाने के कारण देना चाहते थे न कि इनकी योग्यता के कारण। अतः इन्होंने अस्वीकृत कर दिया। वकालत के प्रति निरन्तर अरुचि बढ़ती जाती थी अतः उसे पुनः अपनाना असम्भव था।

सं० १९८१ (सन् १९२४) की कांग्रेस में प्रधान-मन्त्रियों को वेतन देने की चर्चा चली थी। ये उस समय भी प्रधान-मन्त्री थे और इन्होंने उस विचार का स्वागत किया था। इनके विचार में किसी से आशा तो यह करना कि वह अपना सारा समय लगा कर कार्य करे और उसे उदर पूर्ति योग्य भी न दिया जाय, सर्वथा अनुचित था। क्योंकि इसके परिणाम स्वरूप ऐसे ही लोगों के आश्रय सार्वजनिक कार्य छोड़ना पड़ेगा जिनके पास व्यय का निजी प्रबन्ध हो। किन्तु इस प्रकार के अवकाश के समय कार्य करने वाले राजनीतिक दृष्टि से सदैव वाञ्छनीय नहीं होते और न उन्हें उनके कार्य का पूर्ण उत्तरदाता ही ठहराया जा सकता है। किन्तु भारतवर्ष में सार्वजनिक कोषों से वेतन लेने के विरुद्ध एक अद्भुत और सर्वथा अनुचित धारणा प्रचलित है। यद्यपि सरकारी नौकरी के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। इनके पिताजी ने इस पर अत्यन्त आपत्ति प्रकट की कि ये कांग्रेस से वेतन लें। इनके सहकारी मन्त्री ने भी इस बात को प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा। यद्यपि उसे धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। अतएव इन्होंने भी वेतन न लिया जब कि ये इसमें कोई अप्रतिष्ठा नहीं समझते थे और वेतन लेने को प्रस्तुत थे।

एक बार इन्होंने इस प्रसंग को अपने पिताजी के सम्मुख बड़े संकोच के साथ गम्भीर और गूढ़ शब्दों में चलाया जिससे उन्हें बुरा न लगे किन्तु उन्होंने कहा कि "तुम्हारे लिए अपना सारा या अधिकतर समय, जनता के कार्यों के स्थान में कुछ धनोपार्जन के कार्य में लगाना अत्यन्त मूर्खता होगी जब कि मैं (पिताजी) थोड़े दिनों के उद्योग से सरलता से उतना धन अर्जित कर सकता हूँ जितना तुम्हारे और तुम्हारी पत्नी के लिये वर्ष भर को पर्याप्त होगा।" युक्ति प्रबल थी। किन्तु इन्हें संतोष न हुआ। तथापि तदनुकूल ही कार्य करते रहे।

नवमाध्याय—

## नाभा-काण्ड

सं० १९७० (सन् १९२३) के सितम्बर मास में देहली में जब कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में ये आये हुए थे तब इन्हें नाभा-नरेश के पदच्युत किये जाने पर सिक्खों द्वारा चलाये हुए आन्दोलन को देखने के लिये निमन्त्रित किया गया। देहली के निकट जैतों में यह अखण्ड-पाठ आन्दोलन चल रहा था। नेहरू जी आचार्य गिडवानी व के० सन्तानम् के साथ वहाँ गये। और एक जत्थे के पीछे हो लिये। जैतो पहुंचने पर पुलिस ने इन्हें रोक कर—एडमिनिस्ट्रेटर (राज्य-व्यवस्थापक) के हस्ताक्षर-युक्त नाभा में प्रवेश न होने का और यदि प्रविष्ट हो गये हों तो तत्काल वापिस चले जाने का आदेश दिखाया। जैतो से उस समय लौटने के लिये कई घण्टे बाद गाड़ी जाती थी। अतः इन्होंने कह दिया कि अभी तो हम यहीं रहना चाहते हैं। ये सब पकड़ लिये गये। वहाँ इनके साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया गया वह ब्रिटिश राज्य में साधारण मनुष्य के साथ भी नहीं किया जाता है। अभियोग क्या था एक नाटक। प्रवेश-निषेधाज्ञोल्लंघन-अभियोग के न्यायाधीश तो स्यात् कोई अशिक्षित सज्जन थे।

हाँ, कालानन्तर चलाये गए षड्यंत्र के अभियोग का न्यायाधीश शिक्षित व बुद्धिमान् था। किंतु कार्यवाही में पुलिस द्वारा अनुचित दबाव, हस्तक्षेप के कारण कोई विशेष अन्तर न था। इनसे एक दिन कारागार में कहा गया कि खेद-प्रकाश करदें और नाभा से चले जाने का वचन दे दें तो अभियोग हटा लिये जायें किंतु इन्होंने अस्वीकार करते हुए कहा कि हमें आवश्यकता नहीं है अपितु राज्य को क्षमा याचना करना चाहिये। अन्त में २ सप्ताह के अनन्तर प्रथम अभियोग में छः मास का कारागार व द्वितीय में स्यात् डेढ़ वर्ष या दो वर्ष का कारावास-दण्ड दिया गया। इस अभियोग द्वारा इन्हें रियासतों की अनेक अंधेरगर्दियों का पता चला और शासन-रीति का परिचय हुआ। किंतु उसी सायंकाल को इन्हें एडमिनिस्ट्रेटर की दण्ड-स्थगित आज्ञा दिखायी गयी जिसमें कोई प्रतिबंध भी न था और दूसरी प्रबन्धाज्ञा थी कि नाभा छोड़ कर चले जायं। तदनुकूल ये मुक्त कर दिये गये और स्टेशन भेज दिये गये। वहाँ से ये प्रयाग चले गये।

ये तीनों साथी नाभा जेल की कोठरियों से मुक्त अवश्य हुए किंतु दुःखदायी विषमज्वर के कीटाणु साथ ले आये। तीनों पर ज्वर का आक्रमण हुआ। इनको अत्यन्त वेग का ज्वर था किंतु दोनों से काल की अवधि कम थी। ये लगभग ३ या ४ सप्ताह रोग-शय्या पर पड़े रहे

दशमाध्याय—

## मुहम्मद अली के साथ

दिसम्बर १९२३ में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन कोकोनाडा (दक्षिण) के अध्यक्ष मौ० मुहम्मद अली थे उन्होंने इनकी इच्छा के विरुद्ध बल देकर इन्हें ही मन्त्री बनाया। ये दोनों प्रेम व परस्पर की गुणग्राहकता के सूत्र से ग्रंथित थे। अतः ये अस्वीकार न कर सके। उनके साथ—छोटी २ बातों के अतिरिक्त—इनका विशेष मतभेद नहीं हुआ और अच्छी निभी।

इन्होंने अ० भा० कां० समिति के कार्यालय में एक नवीन प्रथा चलायी थी—किसी के भी नाम के आगे-पीछे कोई प्रत्यय व पदवी आदि न लिखी जाय। महात्मा, मौलाना, शेख, सैयद, मुन्शी, मौलवी और वर्त्तमानकालीन श्रीयुत, श्री, मिस्टर तथा एस्क्वायर आदि जो अनेकों सम्मान सूचक शब्द हैं और जिनका प्रयोग इतनी अधिकता से तथा प्रायः अनावश्यक होता है—के विषय में ये एक अच्छा उदाहरण उपस्थित करना चाहते थे, किन्तु ये ऐसा कर न पाये। मुहम्मद अली ने बहुत रुष्ट होकर इन्हें एक तार भेजा जिसमें अध्यक्ष के रूप में इन्हें आज्ञा दी थी कि ये पुरानी रीति से ही काम लें और विशेषतः गांधी जी

को नापसंद ही करूँ। मुझे याद है कि एक बार मैं एक तुर्की विद्वान से स्विटजरलैण्ड में मिला था। उन्हें मैंने पहले से ही एक परिचय-पत्र भेज दिया था, जिसमें मेरे लिये लिखा था—'पण्डित जवाहर लाल नेहरू'। किन्तु मिलने पर वह स्तम्भित हुए और कुछ निराश भी। क्यों कि उन्होंने मुझ से कहा कि "पण्डित शब्द से मैंने समझा था कि आप कोई बड़े विद्वान् धार्मिक वयोवृद्ध शास्त्री होंगे"।

अस्तु, मुहम्मद अली ने एक दिन इच्छापूर्वक इन्हें बिठला कर धार्मिक चर्चा की और यह समझाने का प्रयत्न किया कि कुरान ९७ प्रतिशत तो सत्य है ही अतः ३ प्रतिशत भी सत्य होगी और इस प्रकार १०० शतप्रति सत्य है। उनकी युक्तियों का तर्क स्पष्ट न था किन्तु इन्होंने विवाद करना उचित न समझा।

कुछ ही दिनों में देश में हिन्दू-मुसलिम दंगे होने लगे। और वह भी जो कभी मुहर्रम के दिनों में पड़ने पर या गोवध आदि को लेकर कभी २ होते थे। अब मस्जिद के सामने बाजा बजने की तुच्छ बात को लेकर होने लगे। यह बात ऐसी है कि जिससे सब दिन सदा दंगा होने की आशंका बनी रहती थी।

कांग्रेस की ओर से सतत उद्योग किया गया कि किसी प्रकार यह पारस्परिक विद्वेष दूर हो जाये। एकता सम्मेलन किये जाने लगे। देहली में सं० १९८१ (सन् १९२४) में मौ० मुहम्मद अली ने कांग्रेस के प्रधान के रूप में एकता सम्मेलन बुलाया

किन्तु अन्य सम्मेलनों की भाँति यह भी प्रायः असफल ही रहा और इसके समाप्त होते २ ही प्रयाग (इलाहाबाद) में दंगा हो गया जिससे इन्हें बहुत दुःख हुआ। यों यह बहुत बड़ा दंगा न था तो भी जहाँ यह रह रहे हैं वहाँ भी इस प्रकार के दंगे होते देख इन्हें दुःख होना स्वाभाविक ही था। यह दंगा स्यात् रामलीला के दिनों में हुआ था या उसके पश्चात्। रामलीला के दिनों में भी कुछ झगड़ा हुआ था जिससे मस्जिदों के सामने बाजा बन्द करने का प्रतिबन्ध लगा देने के कारण उसके विरोध में रामलीला-उत्सव स्थगित कर दिया गया और तब से लगभग ८ वर्ष तक प्रयाग में रामलीला नहीं हुई जिसका भी इन्हें बहुत खेद रहा क्योंकि इनके विचार में यही कुछ अवसर आते हैं जब सर्व-साधारण, आबाल-वृद्ध को जीवन की दैनिक नीरसता से पृथक् हो कुछ आनन्दानुभूति होती है।

निश्चय ही इन सम्प्रदायों व साम्प्रदायिक भावना को ही इसका उत्तरदाता बनना पड़ेगा। खेद है कि ये सम्प्रदाय कितने आनन्द-नाशक सिद्ध हुए हैं।

एकादशाध्याय—

## पुनः योरप-यात्रा

सं० १६८१ (दिसम्बर १६२४) में जब कांग्रेस के सभापति गांधी जी निर्वाचित हुए (यद्यपि उनके लिये यह कोई विशेष बात न थी वे तो चिरकाल से कांग्रेस के सभापति से भी उच्च-तर स्थान पर थे) तब उन्होंने भी इन्हें ही कार्यकारीमन्त्री चुनवाया।

१६८२ की ग्रीष्म ऋतु में इनके पिता जी अस्वस्थ थे स्वांस का रोग अत्यधिक दुःखदायी हो रहा था। अतः वे सब परिवार-समेत हिमालय में डलहौजी गये। कुछ दिनों पश्चात् ये भी वहाँ पहुंच गये। इन लोगों ने हिमालय के अन्दर डलहौजी से चम्बा तक की यात्रा की। तभी इन्हें देशबन्धु दास के देहावसान का समाचार तार द्वारा मिला और ये चम्बा से पर्वत-यात्रा करते डलहौजी पहुंचे, वहाँ से कार द्वारा रेलवे स्टेशन पर पुनः प्रयाग और प्रयाग से कलकत्ता पहुंचे।

तदनन्तर अपनी पत्नी की निरन्तर बढ़ती हुई अस्वस्थता के कारण डाक्टरों की सम्मति से इन्होंने स्विटजरलैण्ड जाने का पुरोगाम बनाया। क्यों कि यहाँ के सार्वजनिक जीवन से ये

कुछ उपराम से हो गये थे। इन्हें कोई स्पष्ट मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता था और इनका विचार था कि भारत से दूर जाकर यहाँ की बातों को अच्छी दृष्टि से देख सकेंगे और मस्तिष्क के अन्धकारपूर्ण कोने में स्यात् प्रकाश की किरण पहुंच सकेगी।

सं० १९८३ (सन् १९२६ के मार्च मास) में अपनी पत्नी व पुत्र सहित बम्बई से वेनिस के लिये इन्होंने प्रस्थान किया। इनके साथ इनकी बहन और बहनोई श्री रणजीत पण्डित भी गये थे किन्तु उन्होंने योरप-यात्रा का प्रबन्ध इनकी यात्रा के प्रश्न से भी बहुत पहले कर रक्खा था।

योरप से लौटने के १३ वर्ष से कुछ अधिक काल पश्चात् ये पुनः योरप गये थे। योरप का गत महा-युद्ध समाप्त हो गया था और जिस रूप में यह योरप को छोड़ कर आये थे उससे कहीं अधिक परिवर्तित रूप में वह इन्हें अब दिखायी दिया। युद्ध का प्रभाव प्रत्येक स्थान पर अपने स्पष्ट रूप में वर्तमान था। इस यात्रा का समय लगभग पौने २ वर्ष का है। अपनी पत्नी के अस्वस्थ होने के कारण ये अधिक काल के लिये दूसरे स्थानों पर नहीं जा सके। और जब उनका स्वास्थ्य ठीक हो गया तब इन्होंने फ्रांस, इंगलैण्ड और जर्मनी का भ्रमण किया। योरप में भारतीय निर्वासित व्यक्तियों में से जो इन्हें स्थान २ पर मिले। उन में से श्याम जी कृष्ण जी वर्मा, राजा महेन्द्रप्रताप, लाला हरदयाल, वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय और एम० एन० राय के नाम मुख्य हैं। अन्तिम दो के बुद्धिवैभव का इन पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

इस भ्रमण में इन्हें योरप की उन्नतावनत राजनीति आदि के अध्ययन का अच्छा अवसर मिला।

योरप के तत्कालीन श्रमिक-कार्यविरोध (हड़ताल) के अभियोगों को देखकर तद्देशीय न्याय के प्रति इनकी जो श्रद्धा थी उसको बहुत आघात पहुंचा।

सन् १९२६ के अन्त में ब्रसेल्स नगर में होने वाले अधिकार-हीन जातियों के सम्मेलन का समाचार इन्हें बर्लिन में मिला। इन्होंने भी स्वदेश को लिखा कि इस ब्रसेल्स सम्मेलन में राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) को भी भाग लेना चाहिये। यह बात पसन्द की गयी और इन्हें उस सम्मेलन के लिये भारतीय राष्ट्रीय महासभा का प्रतिनिधि बना दिया गया।

यह सम्मेलन १९२७ के फरवरी मास के आरम्भ में हुआ। इसमें जावा, हिन्दी, चीन, फिलस्तीन, सीरिया, मिस्र, उत्तरी अफ्रीका, अरब और अफ्रीका के हब्शियों की जातीय संस्थाओं के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। मक्सिको (अमेरीका) राज्य का एक प्रमुख राजनीतिज्ञ भी एक तटस्थ दर्शक के रूप में उपस्थित था क्योंकि वहाँ का राज्य राजकीय रूप में भाग नहीं ले सकता था।

इस सम्मेलन में एक 'साम्राज्य-विरोधी सभा' स्थापित की गयी। जिसके कई अधिवेशन समय २ पर भिन्न २ स्थानों पर हुए। इन सब से जवाहरलाल जी को अधीनस्थ और औपनिवेशिक प्रदेशों की कुछ समस्याओं को समझने में बड़ी सहायता

मिली और इनके द्वारा पश्चिमी संसार में श्रमिकों के आन्तरिक संघर्षों के मूल तक पहुंचने में सरलता हुई एवं इनके अतीत ज्ञान की प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा पुष्टि व कुछ नवीनता प्राप्त हुई। अखिल-योरपीय श्रमिक-संघों में से इनकी सहानुभूति तीसरे संघ से थी। अतः युद्ध से लेकर अब तक जो भी कार्य द्वितीय श्रमिक-संघ ने किया उससे इन्हें अश्रद्धा हो गयी थी। साथ ही इस द्वितीय संघ के प्रबल समर्थक ब्रिटिश श्रमिक-संघ की शैलियों का भारत का इनका स्वयं का अनुभव था अतः स्वभावतः तृतीय श्रमिक-संघ, जिसमें रूसी साम्यवादियों का प्रभाव था, के प्रति इनकी रुचि बढ़ी। इनकी साम्यवादी रुचि उनके सिद्धान्तों के कारण नहीं अपितु रूस में होने वाले भारी भारी परिवर्तनों के कारण थी। किन्तु यह प्रायः साम्यवादियों के सर्वाधिकारीपन, नये लड़ाकू ढंग और अपने से असहमत लोगों की निन्दा करने के स्वभाव से खिन्न हो जाते थे।

उक्त साम्राज्य-विरोधी-संघ का एक अधिवेशन कोकोन में हुआ। उसमें भी यह सम्मिलित हुए थे। कालान्तर जवाहरलाल जी अपना सम्बन्ध इस संघ से केवल पत्रों द्वारा ही रखते रहे। सं० १९८८ में जब रा० महासभा और सरकार ने दिल्ली में समझौता हुआ और इन्होंने भी उसमें भाग लिया तब उक्त संघ बहुत रुष्ट हुआ और उसने इन्हें संघ की सदस्यता से पृथक् करने का एक प्रस्ताव भी स्वीकृत कर दिया।

सं० १६८४ की ग्रीष्म ऋतु में इनके पिता जी भी योरप पहुंच गये, इनसे वेनिस में मिले और तब प्रायः ये सब साथ रहे। ये, पिता जी, अपनी पत्नी तथा छोटी बहिन के साथ नवम्बर में मास्को गये। यद्यपि ये मास्को में केवल ३-४ दिन ही रुके किन्तु उससे इनके रूस-अध्ययन की आधार-शिला अवश्य स्थापित हो गई।

क्यों कि दिसम्बर में भारत में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन मद्रास में होने वाला था जिसमें सम्मिलित होने की जवाहरलाल की अत्यन्त उत्कट इच्छा थी अतः ये वहाँ से भारत के लिये चल पड़े। यद्यपि इनकी लौटते समय दक्षिण-पूर्वी योरप, टर्की और मिश्र में भी कुछ समय बिताने की इच्छा थी किन्तु समयाभाव से ये ऐसा न कर सके।

द्वादशाध्याय—

## पुनः भारतीय राज-नीति में

योरप से ये बहुत अच्छी शारीरिक और मानसिक अवस्था लेकर लौटे थे। इनकी पत्नी अभी पूर्ण स्वस्थ तो नहीं हुई थीं किन्तु पूर्वापेक्षा अत्यधिक स्वस्थ थीं। अतः इन्हें उनकी ओर से भी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रही थी। इन दिनों ये अपने अन्दर शक्ति और जीवन की पूर्णता का अनुभव करते थे और इनके मन में जो नानाविध विचार-द्वन्द्व रहता था वह इस समय न था। इनका दृष्टि-बिन्दु व्यापक हो गया था और केवल राष्ट्रियता का लक्ष्य इन्हें निश्चित रूप से संकुचित और अपर्याप्त प्रतीत होता था। निस्सन्देह राजनीतिक स्वतन्त्रता आवश्यक है किन्तु जब तक सामाजिक सुधार नहीं होता तब तक देशोन्नति कठिन है। यही कारण है कि यद्यपि सोवियत रूस की कई बातें इन्हें अच्छी नहीं लगती थीं पुनरपि ये उनकी ओर तीव्रता से आकर्षित हो रहे थे और इन्हें रूस संसार को आशा का सन्देश देने वाला प्रतीत हो रहा था। उस समय सं० १९८४ में योरप स्थिर होकर एक प्रकार से एक स्थान पर दृढ़ीभूत होने का प्रयत्न कर रहा था किन्तु ये रूस से नए विश्वास लेकर

लौटे कि निकट भविष्य में योरप ही नहीं अपितु अखिल विश्व में कोई महान् परिवर्तन होने वाले हैं और भयंकर विस्फोटों की संभावना है। उन विचारों के साथ इन्हें ऐसा दिखायी दिया कि उस परिवर्तन के लिये भारतीय जनता को भी कटिबद्ध करने की आवश्कता है और निश्चय ही यह विचारात्मक रूप में ही हो सकता था। जनता को सुदृढ़ और निश्चित विचार देने की आवश्यकता का इन्होंने अत्यन्त उग्ररूप में अनुभव किया। उस समय तक कांग्रेस का लक्ष्य स्पष्ट नहीं था उसकी विचार-धारा एक ओर को नहीं बहती थी। उसकी वेदि से औपनिवेशिक पद के सम्बन्ध में अस्पष्ट और गोल-मोल बातें की जाती थीं। इनका विचार था कि कांग्रेस से पृथक् रह कर श्रमिकों और नवयुवकों में ये विचार कांग्रेस की अपेक्षा अधिक विस्तृत रूप से फैलाये जा सकते हैं। अतः यह कांग्रेस में फंसना नहीं चाहते थे किन्तु उससे बच न सके।

इन्होंने कार्यसमिति में स्वतन्त्रता, भावी युद्ध-संकट एवं साम्राज्य-विरोधी संघ के सम्बन्ध में तथा अन्य कई प्रस्ताव प्रस्तुत किये और प्रायः सब स्वीकृत हुए। और वे सब कार्य-समिति के निजी प्रस्ताव बना लिये गये।

कांग्रेस के खुले अधिवेशन में भी इन्हें ही वे प्रस्ताव उपस्थित करने पड़े और उन सब के वहाँ भी स्वीकृत हो जाने पर ये स्वयं भी अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए थे। स्वतन्त्रता के प्रस्ताव का तो मिसेज एनी बेसेण्ट तक ने समर्थन किया था

और इस चतुर्मुखी समर्थन से इन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई, किन्तु इनके हृदय में यह विचार व्याकुलता उत्पन्न करता था कि लोगों ने या तो उन प्रस्तावों को समझा ही नहीं अथवा उनके अर्थ-अनर्थ किये हैं और अधिवेशन के तत्काल पश्चात् स्वतन्त्रता-प्रस्ताव के सम्बन्ध में जो विवाद उठ खड़ा हुआ उससे स्पष्ट हो गया कि वास्तविक बात यही थी।

उस वर्ष भी इन्हें कांग्रेस का मन्त्री बनना पड़ा इसका एक कारण डा० अन्सारी का सभापति होना था जो इनके पुराने व प्रिय मित्र थे। उनकी उत्कट इच्छा थी कि ये ही मन्त्री बनें। दूसरे इनका भी विचार था कि "जो प्रस्ताव मैंने स्वीकृत कराये हैं तदनुकूल कार्य होता देखने का भी मेरा कर्तव्य है।" मुख्य कारण यह था कि इन्हें भय था कि कहीं कांग्रेस नम्रतर होती न चली जाय क्योंकि सर्वदली कांग्रेस होने वाली थी। और कांग्रेस दुविधा में थी। कांग्रेस को नरमी की ओर झुकने न देने तथा स्वतन्त्रता के ध्येय पर डटाये रखने की इनकी इच्छा प्रबल थी।

उसी वर्ष कांग्रेस-अधिवेशन के साथ २ होने वाले अन्य-सम्मेलनों में से एक 'रिपब्लिकन कांफ्रेंस' भी हुई थी जिसका इन्हें सभापति चुना गया था और यह इन्हें अच्छा लगा था क्योंकि यह अपने को रिपब्लिकन (प्रजातन्त्रवादी) समझते थे। किन्तु खेद है कि यह कांफ्रेंस मृत जात सिद्ध हुई। उसके प्रस्तावों की प्रतियाँ इनको भी कई मास के उद्योग के पश्चात भी न

मिलीं। निस्सन्देह हम लोगों में यह एक महान् दोष है कि हम कार्य आरंभ तो करते हैं किन्तु उसे पूरा नहीं करते।

सं०१९८५ के वर्ष में देश में पुनः एक उत्साह व साहस की लहर दौड़ रही थी। किन्तु साथ ही साम्प्रदायिक समस्या विकट होती जा रही थी। कांग्रेस ने पं० मोतीलाल जी (जो योरप से लौट आये थे) के सभापतित्व में एक उपसमिति बनाई थी जिसका काम साम्प्रदायिक प्रश्न पर पूर्ण विवरण देना एवं भारत का भावी विधान प्रस्तुत करना था। इस समिति के यद्यपि जवाहर-लाल जी सदस्य न थे किन्तु कांग्रेस-मन्त्री के रूप में इन्हें इसके लिये अत्यधिक कार्य करना पड़ता था। उक्त समिति ने जो रिपोर्ट दी थी वह नेहरू रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है। कमेटी को सहयोग देने में पहले तो ये संकुचाये क्योंकि वास्तविक सत्ता हस्तगत हुए विना ही उसके विभाजन या वितरण अथवा तदर्थ-विधान-निर्माण का कार्य व्यर्थ-सा प्रतीत होता था। दूसरे अवश्य ही इस समिति का ध्येय औपनिवेशिक-पद तक ही सीमित था। तीसरे इन्हें यह आशा न थी कि किसी समझौते के द्वारा साम्प्रदायिक समस्या सदा के लिये सुलझ जायगी। इनका विचार था कि जब लोगों का ध्यान इधर से हटकर सामाजिक और आर्थिक समस्या की ओर जायगा तभी उक्त समस्या सुलझेगी। किन्तु इस सम्भावना से कि स्यात् दोनों दल कुछ काल के लिये कोई समझौता करलें तो दशा कुछ सुधर जायगी और पुनः दोनों का ध्यान दूसरी समस्याओं की ओर जा सकेगा, इन्होंने

समिति के कार्य में बाधक होने के स्थान पर उसे यथा-शक्ति सहायता दी।

किन्तु उस समिति द्वारा प्रस्तावित विधान में अवध के ताल्लुकदारों के कहने पर एक धारा यह भी रख दी गई कि उनके स्थापित अधिकार यथापूर्व रहेंगे। इससे इन्हें तीव्र वेदना हुई। निस्सन्देह सारा विधान व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त के आधार पर ही बनाया गया था किन्तु बड़ी २ अद्ध सामन्ती सी रियासतों में उनके स्वामित्व की अटल धारा बना देना इन्हें बहुत ही बुरा लगा। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस-नेता तथा उनसे भी अधिक कांग्रेसी मित्र अपने ही सहकारियों में सामाजिक दृष्टि से जो अधिक अग्रगामी थे उनकी अपेक्षा बड़े २ भूमिपतियों का साथ पसन्द करते थे। अतः स्पष्ट था कि नेताओं और इनके बीच में एक बहुत बड़ी खाई थी। ऐसी दशा में इन्हें प्रधान मन्त्री बना रहना अत्यन्त अनुचित जान पड़ा और उस पद से त्यागपत्र दे दिया। कारण कह दिया कि 'मैं भारत की स्वतन्त्रता के लिये जो संघ स्थापित हुआ है उसके संचालकों में से एक हूँ।' (ऊपर लिखा जा चुका है कि उक्त उपसमिति ने अपना ध्येय औपनिवेशिक पद तक ही सीमित रखा था अतः पूर्ण स्वतन्त्रता के इन जैसे विचार वाले लोगों ने उससे विरोध प्रदर्शनार्थ 'भारत-स्वतन्त्रता संघ' स्थापित किया था) किन्तु कार्य-समिति सहमत न हुई। और इनसे तथा सुभाष बाबू से (सुभाष ने भी उक्त कारण से त्यागपत्र देना चाहा

था) यह कहा कि "तुम लोग संघ का काम निःसंकोच कर सकते हो। उसमें और कांग्रेस की नीति में कोई विरोध नहीं है। वास्तव में कांग्रेस ने तो पहले ही स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी है।" इस पर ये सन्तुष्ट हो गये। यह बात आश्चर्यजनक है कि उन दिनों इन्हें अपना त्यागपत्र वापिस लेने के लिये कितनी शीघ्र सहमत कर लिया जाता था। यह बात अनेकों बार हुई और क्योंकि कोई दल वास्तव में एक दूसरे से पृथक् हो जाने के विचार को पसन्द नहीं करता था इसलिये उससे बचने के लिये जो बहाना मिलता उसी का आश्रय ले लेता।

उन्हीं दिनों साइमन कमीशन भारत में भ्रमण कर रहा था जिसका जनता स्थान २ पर 'गो बैक' के नारे व काले झण्डे दिखा २ कर विरोध कर रही थी। कभी २ भीड़ व पुलिस में झगड़ा भी हो जाता था। लाहौर में बात बहुत बढ़ गई। वहाँ लाला लाजपतराय के नेतृत्व में सहस्रों में प्रदर्शनकारी साइमन का विरोध कर रहे थे। लाला जी सब से आगे थे। एक नवयुवक गर्वान्ध अंग्रेज पुलिस-अधिकारी ने लाला जी पर आक्रमण किया और उनकी छाती पर डंडे लगाये। ये घातक प्रहार थे जिन्होंने अन्त में लाला जी के प्राण लेकर ही छोड़ा। इससे देश में क्रान्ति की भावना तीव्र रूप धारण करती गई और उससे अनेक अनर्थकारी घटनायें हुईं।

उक्त घटना में घातक आघात पाकर भी लाला जी कुछ दिनों के पश्चात् दिल्ली में होने वाले अखिल-भारतीय कांग्रेस

कमेटी के अधिवेशन में सम्मिलित हुयें। यह अधिवेशन लखनऊ के सर्वदल-सम्मेलन के पश्चात् हुआ था। इस अधिवेशन में जवाहरलाल जी ने स्वतन्त्रता के प्रश्न पर छिड़े हुए विवाद पर कहा कि "अब समय आगया है कि कांग्रेस को यह निश्चय कर लेना चाहिये कि वह राजनीतिक तथा सामाजिक भवन में कायापलट करने वाले क्रान्तिकारी दृष्टिकोण को अपनाये अथवा सुधार वादियों के ध्येय और साधनों को।" उस समय ये बहुत देर तक बोले थे। बाद में लाला जी ने इस कष्टमयी दशा भी में इनके भाषण के कुछ अंशों की आलोचना की। इतना ही नहीं लाला जी ने लाहौर लौट कर अपने साप्ताहिक पत्र 'पीपुल' में इनके भाषण की अनेक बातों की समालोचना-पूर्वक एक लेखमाला आरम्भ की। इस लेखमाला का पहला ही लेख छपा था, दूसरा लेख छपने के पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गयी। उनका वह पहला अधूरा लेख, जो सम्भवतः पुस्तकाकार छापने के लिये लिखा गया था और उनका अन्तिम लेख था, जवाहरलाल जी के लिये एक शोक-पूर्ण स्मृति छोड़ गया है।

## लाठी-प्रहारानुभव

लाला जी पर आक्रमण होने व उनकी मृत्यु हो जाने के कारण साइमन कमीशन जहाँ भी गया उसके विरुद्ध प्रदर्शनों का वेग बढ़ता ही गया।

वह लखनऊ आने वाला था वहाँ भी उसके विरोध-प्रदर्शन का आयोजन किया गया। जवाहरलाल जी भी प्रयाग से

लखनऊ पहुंच गये थे और स्वयं कई कार्यों में उपस्थित रहे। इन प्रारम्भिक प्रदर्शनों की, जो पूर्णरूपेण सुव्यवस्थित व शान्त थे, सफलता ने अधिकारियों को झुंझला दिया। और उन्होंने मुख्य २ स्थानों में जलूसों को रोकना और उनके निकाले जाने के विरुद्ध आदेश देना आरम्भ कर दिया।

साइमन कमीशन आने के एक दिन पूर्व एक जलूस (जो सोलह २ व्यक्तियों के समूह के रूप में था) निकला। उसमें प्रथम समूह के आगे जवाहरलाल जी थे। समूह को रोकने के लिये कुछ अश्वारोही सैनिक पीछे से आये और पहले तो समूह को तितर बितर कर दिया फिर लगे डंडों से मारने। जब इन्होंने घोड़ों को ऊपर चढ़ते देखा तो इनकी स्वाभाकि प्रवृत्ति ने इन्हें बचने के लिये प्रेरित किया किन्तु तत्क्षण ही अपने स्थान पर अचल रहने की दूसरी प्रवृत्ति हुई और ये डटे रहे। और प्रथमाक्रमण को सह गये जिसमें पीछे खड़े स्वयं सेवक भी इनके सहायक थे। किन्तु कुछ काल पश्चात् ही इन्होंने अपने को एकाकी पाया और चारों ओर कुछ कुछ गज की दूरी पर थी पुलिस, जो स्वयंसेवकों को पीट २ कर गिरा रही थी। तब ये अपने आप ही तनिक आड़ में हो जाने के लिये सड़क के पार्श्व की ओर शनैः २ चलने लगे। किन्तु पुनः रुक गये और अपने मन ही मन में कुछ सोचने के पश्चात् यह निश्चय किया कि "यहाँ से हट जाना मेरे लिये अच्छा न होगा।" यह सब कुछ पलों में हो गया। इनका उक्त निर्णय इनके उस स्वाभिमान का परिणाम

था जो इन्हें भीरुवत् काय करते नहीं देख सकता था। पुनरपि भीरुता एवं साहस के मध्य की रेखा बहुत सूक्ष्म थी और भीरुता की ओर भी ये जा सकते थे। तत्क्षण ही एक घुड़-सवार इनकी ओर आ गया। वह डण्डा घुमा रहा था। इन्होंने उससे कहा—'लगाओ' और सिर को तनिक बचाया, जो स्वाभाविक था। उसने इनकी पीठ पर धमाधम दो प्रहार किये। इन्हें चक्कर आने लगा और सारा शरीर कांपने लगा किन्तु धन्य है इनके साहस को कि यह अपने स्थान से न हटे। कुछ क्षण पश्चात ही पुलिस-दल हटा लिया गया। स्वयंसेवक पुनः एकत्रित हो गये। बहुत देर पश्चात् अन्त में इन्हें जाने दिया गया।

इस घटना से इनको यह विश्वास हो गया कि अवसर पड़ने पर शारीरिक कष्ट भी सह सकते हैं तथा तदर्थ समर्थ भी हैं। और उत्तेजना के समय भी मस्तिष्क ठीक २ काम करता रह सकता है एवं सारी स्थिति पर ज्ञानपूर्वक विश्लेषण कर सकता है। साथ ही इस घटना ने इन्हें दूसरे दिन होने वाली कठोर-परीक्षा की तैयारी का काम दिया।

दूसरे दिन साइमन कमीशन के आने पर उसके विरोध के लिये जो जन-समूह एकत्रित हुआ वह आशा से परे था और निस्सन्देह उसका कारण वह पहले दिन की घटना थी। जलूस ४-४ की पंक्ति में था। वह स्टेशन के पास पहुंचते ही रोक दिया गया। चारों ओर अश्वारोही पुलिस व सशस्त्र सेना सुसज्जित थी। इतने में ही कुछ घुड़-सवारों की २-३ लम्बी पंक्तियाँ दर्शक-

जन-समूह को भी रौंदती हुई इनके प्रायः ऊपर आ गई थीं। ये लोग अपने स्थान से हटे नहीं। उस समय का दृश्य बड़ा रोमांचक था। इनके न हटने से सवारों ने घोड़ों को रोका। घोड़े दो २ पैरों के बल खड़े रह गये उनके अगले पैर इनके सिरों पर लटके हुए हिल रहे थे। तदन्तर इन सब पर पैदल व घुड़सवार पुलिस की लाठियाँ पड़ने लगीं। वह भयंकर प्रहार थे और पिछले दिन की भाँति इनकी विचार-शक्ति स्थिर नहीं रह सकी किन्तु इतना विवेक अवश्य रहा कि अपने स्थान पर ही खड़े रहना चाहिये, गिरना या पीछे नहीं हटना चाहिये और इस विवेक के साथ ये अपने स्थान से डिगे नहीं। धन्य है इनके साहस व सहन शक्ति एवं धैर्य को। जो सदा राजाओं की भाँति सुख व आराम की स्थिति का अनुभव करता रहा हो वह इतने भयंकर प्रहारों से भी विचलित न हो उसे एवं उसकी इस शक्ति को शतशो धन्यवाद है। यद्यपि प्रहारों से पीडित इनके सम्मुख अन्धकार सा छा गया था और कभी २ क्रोध और उलट कर मारने का विचार भी आया और सोचा की सामने के पुलिस अधिकारी को गिरा कर घोड़े पर स्वयं चढ़ जायें किन्तु दीर्घकालीन शिक्षा एवं अनुशासन ने काम दिया और इन्होंने अपने सिर को मार से बचाने के अतिरिक्त हाथ तक नहीं उठाया। इनके सामने से यह विचार एक क्षण के लिये दूर नहीं हुआ कि यदि इनकी ओर से कुछ भी प्रतिरोध किया गया तो एक भीषण दुर्घटना हो जायगी जिसमें अत्यधिक संख्या में स्वयंसेवक गोलियों से भून दिये जायंगे।

वह अत्यल्प काल बहुत अधिक प्रतीत होता था। शनैः शनैः स्वयंसेवकों की पंक्ति पीछे हटने लगी और जवाहरलाल जी कुछ-कुछ पृथक् व दोनों ओर से खुले हुए रह गए तब इन पर और प्रहार हुए। सहसा किसी ने इन्हें पीछे से उठा लिया और दूर ले गया। सम्भवतः इनके साथियों ने इन पर होते हुए भीषण प्रहारों को देखकर इन्हें इस प्रकार बचाने का निर्णय किया होगा। इन्हें इससे बड़ी झुंझलाहट हुई।

जब तत्कालीन उत्तेजना चली गयी और रक्त की उष्णता दूर हुई तब इन्हें सारे शरीर में पीडा व भारी थकान प्रतीत होने लगी। शरीर का प्रायः अंगप्रत्यंग पीडित था। और सब जगह अन्धी चोटों व मार के चिह्न हो गये थे। किन्तु किसी कोमलाङ्ग पर आघात नहीं हुआ था यही अच्छा हुआ। इसके पश्चात् इन्हें अपनी शारीरिक-दशा एवं सहन-शक्ति का कुछ अधिक अभिमान हो गया। किन्तु मार पड़ने की स्मृति से अधिक तो उन मारने वाले पुलिस वालों विशेषतः अधिकारियों की मुखाकृति की स्मृति बनी हुई है। अधिकतर और वास्तविक मार-पीट तो योरोपियन सारजेण्टों ने की थी भारतीय सिपाही तो हलके हलके ही कार्य चला रहे थे। उन सारजेण्टों के मुखों पर घृणा एवं रक्तपिपासा प्रायः मदोन्मत्त की सीमा तक भरी हुई थी और दया व मनुष्यत्व का चिह्न भी न था किन्तु पुनरपि स्वयं-सेवकों ने और उनके नेता ने अपने को संभाले रक्खा।

उन दिनों ये समाजवाद का प्रचार करने के लिये पूर्ण कटिबद्ध से थे सं० १९८५ में इन्होंने ४ प्रान्तों के राजनीतिक सम्मेलनों का सभापतित्व किया और प्रायः सब में ही समाजवाद के विचार दिये। केवल स्थानीय स्थिति के अनुकूल शब्दों में परिवर्तन अवश्य होता था। सन् १९२८ के अन्तिम दिनों में कलकत्ता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ उसके सभापति पं० मोतीलाल जी थे। उसमें वे अपनी रिपोर्ट स्वीकृत कराना चाहते थे। उसके स्वतन्त्रता संबंधी भाग पर जवाहरलाल जी का पूर्ण मतभेद था और ये उसके कट्टर विरोधी थे। पिता-पुत्र दोनों को ही यह बात विदित थी और ऐसा मतभेद कभी नहीं हुआ था। इन्होंने उनके उक्त रिपोर्ट को स्वीकृत कराने वाले प्रस्ताव का विरोध कांग्रेस के खुले अधिवेशन में किया था। उधर पं० मोतीलाल जी ने यहाँ तक कह दिया था कि "यदि कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को नहीं स्वीकार किया तो मैं अध्यक्ष-पद से त्यागपत्र दे दूंगा।" अन्ततो गत्वा प्रस्ताव स्वीकार हो गया किन्तु उसके द्वारा सरकार को यह चेतावनी दे दी गयी कि यदि सरकार ने इस विधान को १ वर्ष के अन्दर स्वीकार न किया तो फिर कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता के ध्येय को ग्रहण कर लेगी। उस वर्ष भी इन्हें ही प्रधान-मन्त्री चुना गया जिसे इन्होंने मतभेद होते हुये भी स्वीकार किया। उसी समय झरिया में अ० भा० ट्रेड यूनियन कांग्रेस हुयी। उसमें आरम्भिक २ दिनों में ये सम्मिलित हुये थे और फिर कलकत्ता चले आये थे। कलकत्ते में इन्हें सूचित किया गया कि आगामी वर्ष के

लिये ये सभापति चुने गये हैं। यह इन्हें अनुचित प्रतीत हुआ क्योंकि उग्रदल ने जिन सज्जन का नाम उपस्थित किया था उन्होंने रेलवे-कर्मचारियों में वास्तविक कार्य किया था और उनके विरुद्ध दूसरे को सफल होने की आशा न थी अतः नरमदल वालों ने इनका नाम प्रस्तुत किया था।

सन् १९२८ व १९२९ मजदूरों की वर्ग-चेतना के वर्ष थे स्थान २ पर हड़तालें होती थीं और मिल-मालिकों तथा सरकार दोनों ही भयभीत हो गये थे। फलस्वरूप मार्च १९२९ में श्रमिकों के प्रमुख २ नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया ये गिरफ्तारियाँ पंजाब, युक्तप्रदेश और बंगालादि सब प्रदेशों में हुईं। मेरठ के अभियुक्तों के सहायतार्थ एक उपसमिति बनी जिसके सभापति पं० मोतीलाल जी थे और जवाहरलाल जी उसके सदस्य थे। उक्त समिति के कार्य से इन्हें प्रतीत हुआ कि धनी वर्ग को कम्यूनिस्ट-समाजवादी आन्दोलन करने वालों से कोई सहानुभूति नहीं। वकीलों की भी सहायता बिना धन के प्राप्त करना कठिन था। एम० एन० राय पर भी उस समय अभियोग चल रहा था उनकी तथा अन्य रक्षा-समितियों से भी इनका सम्बन्ध रहा था, और उस समय वकीलों के लोभ को देख कर यह आश्चर्य में पड़ गये थे। अन्त में वह मेरठ-षड्यन्त्र-रक्षा-समिति तोड़ देनी पड़ी और ये लोग केवल व्यक्तिगत रूप से सहायता पहुंचाते रहे।

---

त्रयोदशाध्याय—

# राष्ट्रपति के पद पर

सन् १९२९ की कांग्रेस लाहौर में होने वाली थी। देश में पर्याप्त उत्तेजना थी। भगतसिंह का अभियोग चल रहा था और शीघ्र ही एक बड़े आन्दोलन के प्रारम्भ होने की संभावना थी। सभापति-पद के लिये महात्मा गांधी का नाम एक स्वर से लिया जाने लगा। किन्तु उन्होंने विरोध किया, स्वीकार नहीं किया और लखनऊ में अ० भा० कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन किया गया और अन्त तक जो यह आशा थी कि गांधी जी मान जायेंगे वह पूर्ण न हुई और गाँधी जी ने हमारे चरित-नायक जवाहरलाल जी का नाम स्वयं उपस्थित किया। निस्संदेह गाँधीजी के पश्चात् यदि कोई व्यक्ति था तो जवाहरलाल जी। पं० मोतीलाल जी गत वर्ष कलकत्ता कांग्रेस के सभापति थे ही अतः गाँधी जी के इस समयोचित प्रस्ताव को कमेटी ने स्वीकार कर लिया। लाहौर-अधिवेशन के उक्त अवसर पर लाहौर की जनता ने अपार जन-समूह के रूप में इनका जो भव्य स्वागत किया वह सर्वथा उचित ही था। इसी अधिवेशन में कलकत्ता-कांग्रेस द्वारा निश्चित की हुई एक वर्ष की अवधि के व्यतीत होने के पश्चात् ३१ दिसम्बर को आधी

रात के घण्टे की चोट के साथ पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और साथ ही स्वतन्त्रता-युद्ध के संचालनार्थ की जाने वाली कार्यवाही का भी। और २६ जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस मनाना निश्चित हुआ।

सं० १९८६के अन्त में जब ये प्रयाग में थे उसी वर्ष वहाँ कुम्भ (माघ में होने वाला १२ वर्षीय विशाल) मेला था जिसमें समस्त भारत से लाखों स्त्री पुरुष निरन्तर प्रयागराज आ रहे थे। देश में नेहरू-द्वय पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे और जनता की इन पिता-पुत्रों पर अपार श्रद्धा थी। फिर प्रयाग आकर भी वह इनके दर्शन से कैसे वञ्चित रह सकती थी। यात्रियों के दल के दल इनके घर पहुंचते और इनके दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझते थे। उस समय जवाहरलाल जी के हृदय में निश्चय ही स्वभावजन्य स्वाभिमान का समुद्र उत्तालित हो रहा था। यद्यपि इनकी प्रसिद्धि का कोई एक कारण नहीं कहा जा सकता—मुख्य कारण तो इनका त्याग तथा राष्ट्रीय कार्य ही था—तथापि उसकी १–२ दन्त कथायें भी थीं। एक तो यह कि इनके कपड़े पेरिस से धुल के आते थे दूसरे यह कि जवाहरलाल प्रिंस आफ वेल्स के साथ पढ़ते थे। साधारण जनता की दृष्टि में उक्त दो बातें बहुत महत्त्व वाली थीं। इतना बड़ा आदमी जिसके कपड़े पेरिस में धुलते हों, जो सम्राट्-युवराज का सहपाठी हो, देश के लिये इतने कष्ट सहन करे! यह महान त्याग है।

निस्सन्देह उक्त दोनों बातों का खण्डन नेहरू जी ने कई वार किया है और उनमें तथ्य बिलकुल भी नहीं है पुनरपि साधारण जनता में अब भी वे प्रचलित हैं।

२६ जनवरी को देश में अदम्य उत्साह के साथ स्वाधीनता दिवस मनाया गया। तत्पश्चात् गाँधी जी स्वयोजनानुसार नमक-कर-निषेध (सविनय-भंग) आन्दोलन के प्रारम्भ के लिये साबरमती आश्रम से दाण्डी के लिये चल पड़े। अहमदाबाद में अ० भा० कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ। सेनापति अनुपस्थित था किन्तु फिर भी कोई बाधा नहीं पड़ी। कमेटी ने सभापति को रिक्त स्थान की पूर्ति स्वयं करने का अधिकार दिया और इसी प्रकार के अधिकार प्रादेशिक सभापतियों को भी दिये गये। सारांश यह है कि युद्ध-संचालन में जो एकतन्त्र की आवश्यकता होती है उसकी पूर्ति कर दी गई।

६ अप्रैल को गाँधी जी ने समुद्र तट पर नमक-कर को तोड़ा और ३–४ दिन के पश्चात् सारे देश की कांग्रेस समितियों को ऐसा करने का आदेश दे दिया गया। सारे देश में नमक बनाने की धूम मच गयी। १४ अप्रैल को जवाहरलाल जी गिरफ्तार कर लिये गये उसी दिन कारागार में ही इनका अभियोग हुआ और इन्हें छः मास का दण्ड दिया गया। इन्होंने अ० भा० कां० समिति द्वारा प्रदत्त नवीनाधिकार के अनुसार अपनी गिरफ्तारी की सम्भावना को देखकर पहले ही अपने स्थान पर गाँधी जी और यदि गाँधी जी न स्वीकार करें तो अपने पिता

जी (पं० मोतीलाल जी नेहरू) को चुन दिया था। गाँधी जी ने स्वीकार किया नहीं अतः पुत्र के पश्चात् पिता ने इस महान उत्तरदायित्व का भार अपने ऊपर सहर्ष लिया। यद्यपि इनका स्वास्थ्य ठीक न था तथापि इन्होंने इस आन्दोलन के संचालन में अपनी पूरी शक्ति लगा दी जिससे आन्दोलन को बहुत लाभ हुआ किन्तु इस कठोर परिश्रम के कारण इनका रहा सहा स्वास्थ्य व शक्ति भी सर्वथा लुप्त-प्रायः हो गयी।

इस आन्दोलन में इनकी माताजी, धर्मपत्नी आदि समस्त परिवार ने भाग लिया और सब ने पूर्ण उत्साह से काम किया।

५ मई को गाँधी जी पकड़ लिये गये और ३० जून को बम्बई से लौटने पर इनके पिताजी भी। बम्बई में अत्यधिक कार्य करने के कारण इनका स्वास्थ्य सर्वथा नष्ट हो गया था और वे डाक्टरों की सम्मति से पूर्ण विश्रामार्थ जिस दिन मसूरी जाना चाहते थे उस दिन नैनी कारागार पहुंच गये और पिता-पुत्र इकट्ठे हो गये।

डा० सप्रू और जयकर ने मध्य में पड़कर सरकार और कांग्रेस से सुलह करवाने का प्रयत्न किया। १० अगस्त को ये दोनों (पिता-पुत्र) और डा० महमूद स्पेशल ट्रेन द्वारा गाँधी जी से मिलने गये (जो पूना के पास यरवदा जेल में थे) और उसी प्रकार स्पेशल ट्रेन से वापिस आये। इस बीच पं० मोतीलाल जी का स्वास्थ्य बहुत खराब होता गया और यरवदा में ही उन्हें, जिस

दिन लौटने वाले थे, वहुत वेग का ज्वर आ गया था। नैनी आने पर निजी डाक्टर व सरकारी डाक्टरों के उपचार के होते हुए भी जेल में उनका स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरता जा रहा था। अन्त में ८ सितम्बर को १० सप्ताह के पश्चात् वह मुक्त कर दिये गये।

१ मास पश्चात् ११ अक्तूवर को छः मास की अवधि समाप्त होने पर जवाहरलाल जी भी मुक्त हो गये।

मुक्त होते ही इन्होंने प्रा० कार्यकारिणी का अधिवेशन बुला कर युक्त-प्रदेश में लगान वन्दी का आदेश दे दिया। सम्मेलन के साथ ही इन्होंने इलाहाबाद में एक विशाल सभा का आयोजन करके उसमें एक लम्बा भाषण दिया।

१३ को अपनी पत्नीसहित पिता जी (जो उपचार के लिये मसूरी में थे) से मिलने गये। इन्हें यह देखकर सन्तोष हुआ कि अब उनका स्वास्थ्य कुछ ठीक हो रहा था। ये ३ दिन वहाँ उनके साथ रहे। १७ अक्टूबर को ये और इनकी पत्नी वहाँ से प्रयाग को चल पड़े। वहाँ १६ को कृपक-सम्मेलन होने वाला था। मार्ग में देहरादून में इन्हें १४४ धारा की सूचना मिली। लखनऊ में भी दी जाने वाली थी किन्तु इन तक पहुंचायी न जा सकी। मनुष्य-पालयित्री की ओर से इन्हें मानपत्र दिया गया। तत्पश्चात् मोटर से ये प्रयाग चले गये। मार्ग में स्थान २ पर किसानों की सभाओं में व्याख्यान भी देते जाते थे। इस प्रकार १८ की रात को ये प्रयाग पहुंच गये।

१६ को प्रातः ही १४४ धारा की एक सूचना इन्हें और मिली। सरकार इनके पीछे पड़ी थी और ये कुछ घण्टों को ही बाहर थे। ये किसान-सम्मेलन में सम्मिलित होने को उत्सुक थे और उसमें सम्मिलित भी हुए। यह केवल प्रतिनिधि-सम्मेलन था जिसमें लगभग १६०० प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे।

सम्मेलन में पहुंचने के पहले ये अपने पिताजी आदि को लेने स्टेशन पर गये थे। गाड़ी विलम्ब से आई अतः ये उनके उतरते ही सीधे सभा को चल पड़े थे। ८ बजे के अनन्तर रात में ये अपनी पत्नीसमेत सभा से परिश्रान्त अवस्था में घर लौट रहे थे और पिताजी से बातें करने को उत्सुक हो रहे थे किन्तु मार्ग में ही इनकी मोटर रोक ली गयी। वहाँ से इनका घर दिखायी दे रहा था। किन्तु घर पहुंचने के स्थान पर ये पकड़ कर यमुना पार नैनी (सेंट्रल जेल) प्रधान कारागार के अपने चिरपरिचित प्रकोष्ठ में पहुचा दिये गये। जब ये नैनी कारागार के मुख्य द्वार में प्रवेश कर रहे थे उस समय ठीक ६ का घण्टा बज रहा था।

यह इनकी पाँचवी कारागार-यात्रा थी इस बार इनके प्रयाग में दिये गये एक भाषण के ही आधार पर कई अभियोग इन पर लगाये गये और १२४ धारा के अनुसार राजद्रोह के अपराध में डेढ़ वर्ष का सपरिश्रम कारावास और ५००) अर्थदण्ड, १८८२ के नमक-कर-विधान के अनुसार ६ मास का कारावास और १००) अर्थदण्ड तथा १६३० के नियम (आर्डिनेन्स) के

अनुसार ६ मास का कारावास और १००) अर्थदण्ड इन्हें दिया गया। पिछले तीनों दण्ड साथ २ चलने से कुल २ वर्ष का कारावास और अर्थदण्ड न देने से ५ मास का कारावास और हुआ।

इनके पकड़े जाने से जनता में पुनः उत्साह व साहस की लहर दौड़ पड़ी। इनके पिता जी को भी इस घटना ने उत्साहित किया और रुग्ण होते हुए भी मानसिक शक्ति के आधार पर वे पूरे उत्साह से कार्य करने लगे उन्होंने नवम्बर में एक दिन (जो कि जवाहरलाल जी का जन्म दिन था) सारे भारतवर्ष में मानने की घोषणा की और उस दिन की आयोजित सभाओं में इनके उन भाषणांशों के पढ़ने का आदेश दिया जिनके आधार पर इन्हें दण्ड मिला था। उस दिन सारे देश में लगभग ५००० गिरफ्तारियाँ हुई होंगी और कई स्थानों पर लाठी-प्रहार किये गये। वह जन्मोत्सव भी अपने ढंग का विचित्र दिन था।

भूमि-कर-बन्दी आन्दोलन बल पकड़ता जा रहा था क्यों कि सरकार ने तत्काल उसको पददलित करने की नहीं ठानी। स्यात् वह किसानों को छेड़ना उचित नहीं समझती थी। उन दिनों लन्दन में गोलमेज कांफ्रेंस हो रही थी।

शनैः शनैः दमन बढ़ा। कांग्रेस समिति आदि संस्थायें अनियमित घोषित कर दी गईं। राजबन्दियों के साथ अधिक बुरा बर्ताव होने लगा। कहीं २ पर तो बेत लगाये जाने लगे और वह भी कोमल-हृदयों नवयुवकों के। यह सूचना जब

जवाहरलाल जी को मिली तो इन लोगों (ये, सैयद महमूद, नर्मदा प्रसाद और रणजित पण्डित) ने इस नृशंसता-परिपूर्ण कार्यवाही के विरोध व दण्डित स्वयंसेवकों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शनार्थ ३ दिन (७२ घंटे) का पूर्ण उपवास किया जिससे इन ३ दिनों में ही इन सब का भार ७-८ पौण्ड कम हो गया था। इससे पहले मास में १५ से २६ पौण्ड तक का भार प्रत्येक का घट चुका था सो पृथक्।

पं० मदनमोहन मालवीय जी भी उन दिनों नैनी कारागार में ही पहुंच गये थे और यद्यपि इनसे पृथक् रखे गये थे तथापि ये इन से प्रतिदिन मिलते और इन्होंने बाहर की अपेक्षा वहाँ उनसे अधिक परिचय कर पाया। पं० मालवीय जी भी बेंत का दण्ड सुन कर बहुत क्रोधित हुए थे और उन्होंने तत्कालीन कार्यवाहक गर्वनर को इस विषय में लिखा भी था।

## पिता का देहान्त

२६ जनवरी को जब कि सर सप्रू आदि के समझौते के प्रयत्न के फलस्वरूप कांग्रेस कार्य समिति के अन्य सदस्य छूटे उसके कुछ घण्टे पहले ही जवाहरलाल जी व रणजित पण्डित छोड़ दिये गये क्योंकि जवाहरलाल जी के पिताजी की दशा चिन्ताजनक थी। पिताजी को इन्होंने १२ जनवरी को (जब वे नैनी जेल इनसे मिलने गये थे) देखा था तब उनका मुख देखकर इनके हृदय को एक आघात पहुंचा था क्योंकि तभी चिह्न अच्छे न थे अब तो उनका स्वास्थ्य अत्यधिक गिर गया

था और जो शोथ उनके मुख पर १२ को था उससे भी अधिक अब था।

इन्हें व रणजित् पंडित को देखकर वह प्रसन्न हुए। उसी दिन यरवदा जेल से गाँधी जी भी छोड़ दिये गये और वे दूसरे दिन ही बम्बई से प्रयाग को चल पड़े। वह प्रयाग रात को देर से पहुंचे। लेकिन पं० मोतीलाल जी उनसे मिलने को इतने इच्छुक थे कि तब तक जागते रहे और उनके पहुंचने व कुछ शब्द सुनने से उन्हें बड़ी शान्ति मिली। गाँधी जी के पहुंचने से इनकी माँ को भी बहुत शान्ति व धैर्य मिला।

२ दिन में कार्यसमति के अधिवेशन में सम्मिलित होने ३०-४० लोग प्रयाग पहुच गये और स्वराज्य भवन में ही अधिवेशन होने लगा। किन्तु सब को उस समय चिन्ता पं० मोतीलाल जी की थी जिनके बचने की कोई आशा न थी। जवाहरलाल जी के दुःख व चिन्ता का वर्णन तो असम्भव प्रायः है उन्होंने उस अधिवेशन में भी प्रायः नहीं सा भाग लिया। शेष लोग २-२, ३,३ करके पं० मोतीलाल जी से मिलने जाते थे। किन्तु वह हाथ उठाने के अतिरिक्त अपने चिरपरिचित मित्रों का स्वागत करने की उत्कट इच्छा रखते हुए भी उनसे बोलने तक में असमर्थ थे। कभी २ कुछ शब्द बोलते थे। उन्होंने गाँधी जी से कहा—“महात्मा जी ! मैं शीघ्र ही चला जाने वाला हूँ, स्वराज्य देखने के लिये जीवित न रहूँगा। किन्तु मैं जानता हूँ कि आपने स्वराज्य जीत लिया है और वह शीघ्र ही आपके हाथ में आ जाय गा।”

शनैः २ और सब लोग चले गये। केवल गाँधीजी तथा कुछ घनिष्ठ मित्र व निकट के सम्बन्धी तथा ३ प्रसिद्ध डाक्टर, जो पं० मोतीलाल जी के पुराने मित्र थे और जिनके लिये वह कहा करते थे कि "मैंने अपना शरीर इनके हाथों में सौंप दिया है," रह गये थे डाक्टर अन्सारी, विधानचन्द्र राय और जीवन मेहता। ४ फरवरी को उनकी दशा कुछ अच्छी जान पड़ी। अतः यह निश्चय किया गया कि उन्हें लखनऊ ले जाया जाय जहाँ कि एक्सरे द्वारा उपचार की सुविधायें हैं। उसी दिन मोटर से उन्हें लखनऊ ले जाया गया। साथ में गाँधीजी और कुछ लोग थे। गये तो धीरे २ किन्तु फिर भी पं० मोतीलाल जी बहुत थक गये। दूसरे दिन थकावट दूर होती दिखी पुनरपि लक्षण अच्छे न दिखायी देते थे। दूसरे दिन प्रातः जवाहरलाल जी उनके बिछौने के पास बैठे हुए उन्हें देख रहे थे रात उनकी कष्ट व व्याकुलता में बीती थी। एकाएक उनकी मुख मुद्रा शान्त हो गयी और संघर्ष-शक्ति समाप्त हो गयी। जवाहरलाल जी ने समझा कि उन्हें नींद लग गयी है अतः उससे इन्हें कुछ प्रसन्नता सी हुई किन्तु इनकी माता की दृष्टि तीक्ष्ण थी वह रो पड़ीं। इन्होंने माताजी को रोते देखकर कहा कि उन्हें नींद लगी है जग जायेंगे। किन्तु वह नींद तो उनकी अन्तिम नींद थी और तत्पश्चात् पुनः जागरण नहीं हो सकता था।

उसी दिन ये उनके शव को मोटर से प्रयाग लाये। जवाहर-लाल जी उसके साथ बैठे। रणजित् गाड़ी चला रहे थे और

पुराना नौकर हरि भी साथ था। उसके पीछे दूसरी मोटर में इनकी माता जी व गाँधीजी थे उसके बाद दूसरी मोटरें थीं। जवाहरलाल जी सारे दिन किंकर्त्तव्य विमूढ़ से रहे। लखनऊ में ही इस सूचना के मिलते ही एक भारी भीड़ एकत्रित हो गयी थी। शव लेकर प्रयाग आये। शव राष्ट्रीय झण्डे में लिपटा हुआ था ऊपर एक झण्डा फहरा रहा था। मीलों तक विशाल जन समुदाय उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने को एकत्रित हो गया था। घर पर कुछ अन्तिम विधियां की गईं और फिर गंगा-यात्रा को चले। विशाल जन समूह साथ था। जाड़ के दिन थे। सन्ध्याकालीन अन्धकार शनैः शनैः गंगा तट पर फैल रहा था और चिता की ऊची-ऊँची ज्वालाओं ने उस शरीर को भस्म कर दिया जिसका जवाहरलालादि के लिय; उनके इष्ट-मित्रों के लिये और भारत के लाखों लोगों के लिये इतना मूल्य और महत्त्व था। गाँधीजी ने संक्षिप्त हृदय-स्पर्शी भाषण दिया और तत्पश्चात् सब लोग मौनालम्बन किये हुए घर चले आये। जब ये लोग उदास एवं निःशब्द लौट रहे थे तब आकाश में तारे तीव्रता से चमक रहे थे।

जवाहरलाल जी व उनकी माँ को सहस्रों सहानुभूति के सन्देश मिले। इस बहुत भारी सद्भावना और सहानुभूति ने इनके दुःख और शोक की तीव्रता को कम कर दिया था। किन्तु सब से अधिक और आश्चर्यजनक शान्ति और सान्त्वना का कारण था गाँधी जी की वहाँ उपस्थिति। जिससे इनकी माता

जी व इन सब लोगों को जीवन के इस संकट-काल का सामना करने का बल मिला।

जवाहरलाल जी के लिये यह अनुभव करना कठिन था कि पिता जी अब नहीं हैं। तीन मास पश्चात् ये अपनी पत्नी और पुत्री-सहित लंका गये। वहाँ इन लोगों ने नुवारा एलीया में शान्ति और आराम से कुछ दिन बिताये। वह स्थान इन्हें अतीव पसन्द आया और एकाएक विचार आया कि "पिता जी को यह स्थान अवश्य अनुकूल पड़ेगा। तो इन्हें यहाँ क्यों न बुला लूँ? वह बहुत थक गये होंगे और यहाँ के आराम से उन्हें अवश्य लाभ होगा"। ये उनको प्रयाग तार भेजने को प्रस्तुत हो गये थे।

लंका से प्रयाग लौटते समय डाक से इन्हें एक विचित्र पत्र मिला। आवरण (लिफ़ाफे) पर इनके पिता जी के हस्ताक्षरों में प्राप्ति-स्थानादि लिखा हुआ था और उस पर न जाने कितने चिह्न व पत्रालयों की मुद्रायें लगी हुई थीं। इन्होंने उसे खोला तो वास्तव में वह इनके पिता जी का लिखा हुआ निकला। किन्तु तारीख उस पर थी २८ फरवरी सन् १९२६। वह इन्हें १९३१ की ग्रीष्म ऋतु में मिला और इस प्रकार वह लगभग साढ़े पाँच वर्ष तक इधर उधर भटकता रहा। १९२६ में जब जवाहरलाल जी ने अपनी पत्नी के साथ योरप को प्रस्थान किया था तब इनके पिता जी ने वह पत्र अहमदाबाद से लिखा था और इटालियन स्टीमर लायड, जिससे कि ये यात्रा करने वाले थे, के पते पर

बम्बई भेजा था। यह स्पष्ट है कि वह इन्हें उस समय नहीं मिला और अनेकों स्थानों का भ्रमण करता रहा तथा अन्त में इनके पास पहुंच ही गया। यह एक विचित्र संयोग की बात है कि वह विदाई का पत्र था।

जिस दिन जिस समय इनके पिता जी की मृत्यु हुई थी उसी दिन प्रायः उसी समय गोलमेज कांफ्रेंस के कुछ भारतीय सदस्य जहाज से उतरे। वे थे श्री श्रीनिवास शास्त्री और तेजबहादुर सप्रू आदि। पश्चात् गांधी-इर्विन समझौते का आरम्भ हुआ। और अन्त में कई उतार चढ़ाव के अनन्तर ५ मार्च १९३१ को समझौता हो गया। यद्यपि ये उससे सन्तुष्ट न थे किन्तु करते ही क्या? परिस्थितियों से विवश थे। उस प्रस्ताव से सहमत न होते हुए भी सहमति प्रकट करने की सी दशा से इन्हें अत्यन्त मानसिक व्यथा हुई। जिसे जानने पर गांधी जी ने इन्हें विशेष रूप से बुलाकर, समझौते में निहित कुछ शब्दों की विशिष्ट व्याख्या कर के इन्हें सान्त्वना दी।

इस समझौते के बाद ही इनका स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया। जेल में कुछ स्वास्थ्य खराब रहा था उसके पश्चात् पिता की मृत्यु का गहरा धक्का लगा और तत्काल ही देहली में समझौते की चर्चा का प्रभाव पड़ा। यह सब इनके स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध हुआ। किन्तु कराची कांग्रेस होने तक ये कुछ २ ठीक हो चले थे।

---

चतुर्दशाध्याय—

## कराची-कांग्रेस

कराची-कांग्रेस के पहले ही सरदार भगतसिंह को फांसी लग चुकी थी अतः कराची में पंजाब से बहुसंख्या में लोग पहुंचे थे।

कराची के मुख्य प्रस्ताव में देहली समझौते और गोलमेज कांफ्रेंस का विषय था। कार्यसमिति ने जिस अन्तिम रूप में उसे स्वीकार किया था उसे इन्होंने अवश्य ही स्वीकार कर लिया था। किन्तु जब गांधीजी ने खुले अधिवेशन में उसे प्रस्तुत करने को इन्हें कहा तो ये हिचकिचाये। यह इनकी इच्छा के विरुद्ध था। पहले तो इन्होंने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया किन्तु बाद को यह इन्हें अपनी निर्बलता और असन्तोष-जनक स्थिति जान पड़ी। इन्हें यह विचार आया कि "या तो मुझे इसके पक्ष में होना चाहिये या इसके विरुद्ध, यह उचित नहीं कि ऐसे विषय पर टालमटोल करूँ और लोगों को अटकलें बांधने के लिये खुला छोड़ दूँ।" अतः अन्ततोगत्वा अन्तिम घड़ी पर खुले अधिवेशन में प्रस्ताव आने के कुछ ही मिनट पहले, इन्होंने उसे प्रस्तुत करने का निश्चय किया। अपने भाषण में इन्होंने अपने हृदय

के भाव ज्यों के त्यों उस विशाल जन-समुदाय के सम्मुख प्रस्तुत कर दिये और उससे प्रार्थना की कि उस प्रस्ताव को हृदय से स्वीकार कर ले। इनका वह भाषण, जो ठीक समय पर अन्तः-स्फूर्ति से दिया गया और जो हृदय की गहराई से निकला था, जिसमें यद्यपि शब्दाडम्बर व आलंकारिक प्रयोगों का अभाव था तथापि, स्यात् इनके उन अनेक भाषणों से अधिक सफल रहा जिनके लिये पहले से ध्यान देकर तैयारी करने की आवश्यकता हुई थी।

ये अन्य प्रस्तावों पर भी बोले थे। उनमें भगतसिंह, मौलिक अधिकार और आर्थिक नीति के प्रस्ताव उल्लेखनीय हैं। अन्तिम प्रस्ताव में इनकी विशेष रुचि थी क्योंकि एक तो उसका विषय ही ऐसा था और दूसरे उसके द्वारा कांग्रेस में एक नये दृष्टिकोण का प्रवेश होता था।

इस प्रस्ताव के विषय में कई अटकलें उड़ीं कि यह तो बोल-शेविकों का रुपया लुक-छिपकर कराची जा पहुंचा है और कांग्रेस के नेताओं को नीति भ्रष्ट कर रहा है। कथा यहाँ तक गढ़ ली गई कि "एक छिपे व्यक्ति—एम० एन० राय (?)—ने, जिसका कम्यूनिस्टों से संबंध है, पूरे प्रस्ताव का या उसके अधिकतर भाग का ढांचा बनाया है और उसने कराची में वह इनके मत्थे मढ़ दिया है। इन्होंने गांधी जी को चुनौती दे दी कि या तो इसे स्वीकार कीजिये या दिल्ली समझौते पर विरोध के लिये तैयार रहिये। गांधी जी ने इन्हें चुप करने के लिये यह रिश्वत दे दी

और अन्तिम दिन जब कि विषय-समिति और कांग्रेस थकी हुई थी, उन्होंने इसे उसके सिर पर लाद दिया।" किन्तु यह केवल कथामात्र ही थी तथ्य कुछ और ही था। ये स्वयं लिखते हैं:—"एम० एन० राय या दूसरे कम्यूनिस्ट-विचार वाले कराची के उस सीधे सादे प्रस्ताव को कुछ कुछ घृणा की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि उनके मतानुसार तो यह मध्यमवर्ग के सुधारवादियों की मनोवृत्ति का एक सजीव उदाहरण है।"

"..........किन्तु एम० एन० राय से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था, और मैं यह अच्छी तरह जानता था कि वह इसको बिलकुल पसन्द नहीं करेंगे और इसकी खिल्ली तक उड़ावेंगे।"

जहाँ तक गांधी जी से सम्बन्ध है उनसे इनकी घनिष्टता गत १७ वर्षों से थी इन्हें उन्हें अत्यन्त निकट से जानने का सौभाग्य प्राप्त है। यह विचार कि ये उन्हें चुनौती दें या उनसे सौदा करें, इनकी दृष्टि में भयानक है। हाँ ये एक दूसरे का अत्यन्त ध्यान रखते हैं और कभी किसी विशेष समस्या पर पृथक् भी हो सकते हैं किन्तु इनके आपस के व्यवहार में वाजारू ढंगों से कदापि कार्य नहीं लिया जा सकता।

कांग्रेस में इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार कराने का विचार पुराना है। कुछ वर्षों से संयुक्त-प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी इस विषय में हलचल मचा रही थी और यत्न कर रही थी कि अ०भा०कां० कमेटी समाजवादी प्रस्ताव को स्वीकार कर ले। सं० १६८६ में उसने कुछ सीमा तक उसे स्वीकार कर लिया था। तदनन्तर सत्याग्रह

आ गया। तत्पश्चात् दिल्ली में फरवरी १९३१ में जब कि ये गांधी जी के साथ प्रातः भ्रमणार्थ जाया करते थे तब इन्होंने उन से इस विषय में चर्चा की थी और उन्होंने आर्थिक विषयों पर एक प्रस्ताव रखने के विचार का स्वागत किया था। उन्होंने इनसे कहा था कि "कराची में इस विषय को उठाना और इस विषय में एक प्रस्ताव बना कर मुझे दिखाना।" कराची में इन्होंने प्रस्ताव की रूप रेखा प्रस्तुत की और गांधी जी ने उसमें अनेकों परिवर्तन सुझाये और कई बातें बढ़ाईं। गांधी जी चाहते थे कि कार्य-समिति के सम्मुख उपस्थित करने के पूर्व वह और ये उसकी भाषा पर सहमत हो जायें। इन्हें अनेकों रूपरेखायें खींचनी पड़ीं और इस कारण इस प्रस्ताव को कुछ दिन का विलम्ब हो गया। यह सत्य है कि विषय-समिति के लिये यह विषय सर्वथा नवीन था और कुछ सदस्यों को उसे देखकर आश्चर्य हुआ। तथापि वह कमेटी व कांग्रेस द्वारा सरलता से स्वीकार कर लिया गया। और तनन्तर वह अ० भा० कां० कमेटी को दे दिया गया कि वह निर्दिष्ट दिशा में उसको और विशद और व्यापक बनावे।

निस्सन्देह जब ये उक्त प्रस्ताव की रूपरेखा खींच रहे थे तब कितने ही लोगों से, जो इनके डेरे पर जाया करते थे, इसके विषय में ये कभी २ कुछ सम्मति ले लिया करते थे। किन्तु एम० एन० राय से इसका कोई संबंध न था। कराची में वे इनसे मिले थे किन्तु ५ मिनट से अधिक नहीं।

# लंका में विश्राम

कराची-अधिवेशन के अनन्तर इनके डाक्टरों ने इन्हें कुछ विश्राम करने की सम्मति दी और बहुत बल दिया। अतः ये अपनी पत्नी और पुत्री सहित लंका गये। भारत में किसी भी स्थान पर रह कर विश्राम पाना इनके लिये असम्भव प्रायः था और दूर विदेश ये जाना नहीं चाहते थे अतः लंका का पुरोगम बना था। इस लंका-यात्रा का वर्णन संग-वश कुछ पूर्वाध्याय में भी आ चुका है।

पुनरपि, लंका में भी इन्हें नुवाया एलीया में २ सप्ताहों के अतिरिक्त अधिक विश्राम नहीं मिला। वहाँ के सभी लोगों ने इनके प्रति बहुत ही आतिथ्य और मित्र-भाव प्रदर्शित किया और वह इस सीमा तक पहुंच जाता था कि ये उससे उद्विग्न से हो जाते थे। नुवाया एलीया में बहुत से श्रमिक और अन्य लोग प्रति दिन कई मील चल कर आया करते थे और अपने साथ अपनी प्रेम-पूर्ण भेंट की वस्तुएँ—जंगल के फल-फूल शाक-पात, घर का मक्खन—भी लाया करते थे। ये तो उनसे प्रायः बात भी नहीं कर सकते थे, एक दूसरे की ओर देख भर लिया करते थे। और मुस्करा देते थे। इनका छोटा सा घर उनकी भेंट के इन बहुमूल्य पदार्थों से—जो वे अपनी दरिद्रावस्था में भी इन्हें दे जाते थे—भर गया था। इन पदार्थों को ये वहाँ के अस्पतालों और अनाथालयों को भेज दिया करते थे।

इन्होंने उस द्वीप की प्रसिद्ध वस्तुओं और ऐतिहासिक खंडहरों बौद्धमठों और घने जंगलों को देखा। अनुराधापुर में इन्हें बुद्ध की एक प्राचीन बैठी हुई मूर्त्ति बहुत पसन्द आयी। एक वर्ष पश्चात् जब ये देहरादून जेल में थे, तब लंका के एक मित्र ने इस मूर्त्ति का चित्र इनके पास भेज दिया था, जिसे ये अपनी कोठरी में अपनी छोटी सी मेज पर रक्खे रहते थे। यह चित्र इनका बड़ा मूल्यवान् साथी बन गया था और बुद्ध की मूर्त्ति के गम्भीर शान्त भावों से इन्हें बड़ी शान्ति और शक्ति मिलती थी, जिस से इन्हें कई बार उदासी के अवसरों पर बड़ी सहायता मिली।

बुद्ध सदैव इन्हें बहुत आकर्षक प्रतीत हुए हैं इसका कारण बताना तो कठिन है, किन्तु वह धार्मिक नहीं है; क्योंकि बौद्ध-धर्म के आसपास जो मताग्रह जम गये हैं उनमें इनकी कोई अभिरुचि नहीं है। उनके व्यक्तित्व ने ही इन्हें आकर्षित किया है। इसी प्रकार ईसा के व्यक्तित्व के प्रति भी इनका बड़ा आकर्षण है।

लंका में इन्होंने मठों में और सड़कों पर बहुत से भिक्षुओं को देखा, जिन्हें प्रत्येक स्थान पर, जहाँ कहीं वे जाते थे, सम्मान मिलता था। प्रायः सभी के मुखों पर शान्ति और निश्चलता का, तथा संसार की चिन्ताओं से एक विचित्र वैराग्य का, मुख्य भाव था। साधारणतया उनके मुखों से बुद्धिमत्ता नहीं झलकती थी, उनकी मुखाकृति से मस्तिष्क के अन्दर होने वाला भयंकर

संघर्ष नहीं प्रतीत होता था। जीवन उन्हें महासागर की ओर शान्ति से बहती हुई नदी के समान दिखायी देता था। ये उनकी ओर कुछ ईर्ष्या के साथ, आंधी और भयंकर झंझावात से रक्षा करने वाले शान्त बन्दरगाह पाने की एक हलकी उत्कण्ठा के साथ, देखते थे। किन्तु ये जानते थे कि इनके भाग्य में और ही कुछ है, उसमें तो आंधी और तूफान ही हैं। इन्हें कोई शान्त बन्दरगाह मिलने वाला नहीं है, क्योंकि इनके भीतर का झंझावात भी उतना ही प्रचण्ड है जितना बाहर का। और यदि इन्हें कोई ऐसा बन्दरगाह मिल भी जाय जहाँ दैवयोग से आंधी की प्रचण्डता न हो, तो भी क्या वहाँ ये सन्तोष और सुख से रह सकेंगे?

कुछ काल के लिये तो वह बन्दरगाह सुन्दर ही था। वहाँ मनुष्य पड़ा रह कर नाना प्रकार के सुख स्वप्न देख सकता था और उष्ण-कटिबन्ध का शांतिप्रद और जीवनदायी आनन्द अपने अन्दर भर सकता था। लंका द्वीप उस समय इनकी भी वृत्ति के अनुकूल था और उसकी शोभा देख कर इनका हृदय हर्ष से भर गया।

विश्राम का इनका वह मास शीघ्र ही समाप्त हो गया और हार्दिक दुःख के साथ ये वहाँ से विदा हुए।

लंका से ये दक्षिण भारत, ठीक कुमारी अन्तरीप के पास, दक्षिणी सिरे पर गये। तदनन्तर त्रावणकोर, कोचीन, मालावार, मैसूर, हैदराबाद होते हुये बम्बई पहुँचे। मैसूर के बंगलौर नगर

में एक विशाल जन-समुदाय के मध्य, इन्होंने लोहे के एक उच्च स्तम्भ पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया था। इनके जाने के थोड़े दिनों पश्चात् ही वह स्तम्भ तोड़ कर टुकड़े २ कर दिया गया और मैसूर-राज ने झण्डा-प्रदर्शन अपराध घोषित कर दिया। जिस झण्डे को इन्होंने फहराया था उसका ऐसा अपमान होने से इन्हें बड़ा दुःख हुआ।

ये हैदराबाद मुख्यतया श्रीमती सरोजनी नायडू और उनकी पुत्रियों—पद्मजा और लीलामणि—से मिलने गये थे।

## गोलमेज कांफ्रेंस

उन दिनों गोलमेज कांफ्रेंस में कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी के सम्मिलित होने की समस्या कांग्रेस के सामने थी। वाइसराय लार्ड इर्विन के स्थान पर लार्ड विलिंगटन आए थे। गांधी जी ३ बार शिमला गये और अन्त में इन्हें भी उन्होंने शिमला बुला लिया था। जब एक प्रकार का समझौता हुआ जो सर्वथा अन्तिम घड़ी में किया गया ताकि गांधी जी उस जहाज से जा सकें जिसमें गोलमेज कांफ्रेंस के प्रतिनिधि जा रहे थे, तब अन्तिम ट्रेन छूट चुकी थी अतः शिमला से कालका तक एक स्पेशल ट्रेन तैयार कराया गयी और कालका से छूटने वाली गाड़ी पकड़ने के लिये दूसरी गाड़ियाँ रोक दी गयीं।

ये गांधी जी के साथ शिमले से बम्बई तक गये। और वहाँ अगस्त के एक सुन्दर प्रभात में इन्होंने उन्हें विदाई दी एवं वह

अरब के समुद्र और सुदूर पश्चिम की ओर बढ़ चले। आगामी दो वर्ष तक के लिये गांधी जी के ये अन्तिम दर्शन थे।

उस समय ये अ० भा० कांग्रेस के प्रधान मन्त्री थे। प्रादेशिक वा प्रान्तीय कांग्रेस के भी सदस्य थे। दूसरे शब्दों में सारे देश की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी घटनाओं आदि से सम्बन्धित थे।

गोलमेज कांफ्रेंस लम्बी होती जा रही थी और उससे लोगों को कोई आशा नहीं दीखती थी। इधर युक्तप्रदेश-सीमाप्रदेश और बंगाल की परिस्थिति भयंकरतम होती जा रही थी तथा ऐसा प्रतीत होने लगा था कि अन्ततो गत्वा संघर्ष होके ही रहेगा। इनकी इच्छा सीमाप्रदेश और बंगाल जाकर वहाँ की परिस्थिति का निकट से अध्ययन करने की थी। सीमाप्रान्त जाने में प्रतिबन्ध बाधक था। बंगाल में आपस की फूट का भय था। पुनरपि ये नवम्बर १६३१ में कुछ दिनों के लिये कलकत्ता गये। वहाँ इनका कार्यक्रम बहुत व्यस्त रहा और वैयक्तिक रूप में लोगों से मिलने के अतिरिक्त कई सार्वजनिक सभाओं में इन्होंने भाषण भी दिये। इन सभाओं में इन्होंने आतंकवाद के प्रश्न पर भी चर्चा की और यह बताने का यत्न किया कि भारत की स्वतन्त्रता के लिये वह कितना असंगत, निरर्थक और हानिकारक है। इन्होंने आतंकवादियों को बुरा नहीं कहा, और न इन्होंने अपने कुछ देशवासियों, जिन्होंने त्याग ही कभी पराक्रम या भय का कोई काम करने का साहस किया हो,

की भाँति उन्हें 'भीरु' ही कहा। इन्हें सदा यह बड़ी मूर्खतापूर्ण बात प्रतीत हुई कि ऐसे स्त्री या पुरुष को जो निरन्तर अपनी जान को हथेली पर लिये रहता है, 'भीरु' कहा जाय। इसका प्रभाव उस व्यक्ति पर यह होता है कि वह अपने समालोचकों को, जो केवल खड़े रह कर ही चिल्लाते हैं किंतु कर कुछ भी नहीं सकते, तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगता है।

कलकत्ते से प्रस्थान करने के लिये स्टेशन पर जाने से थोड़ी देर पहले वहाँ सायं-काल इनके पास दो युवक आये। वे अत्यल्प आयु, संभवतः २०-२० वर्ष के नवयुवक थे। उनकी आँखें ओज-मयी थीं। यद्यपि इन्हें उनका नामादि कुछ ज्ञात न था किन्तु अनुमान से ये समझ गये कि वे कौन हो सकते हैं। वे इनके आतंकवाद तथा हिंसा के विरुद्ध प्रचार से इनसे बहुत रुष्ट थे। उन्होंने इनसे कहा कि उससे नवयुवकों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है और इस प्रकार इनका हस्तक्षेप करना वे अच्छा नहीं समझते हैं। इन्होंने उनसे कुछ वाद-विवाद भी किया किन्तु शीघ्रता में क्योंकि इनके स्टेशन पहुंचने का समय समीप आ रहा था। सम्भवतः उस समय उन लोगों की ध्वनि तीव्र व मुख कुछ उग्र सा हो गया था और इन्होंने उनसे कुछ कठोर शब्द भी कह दिये थे और जब ये उन्हें वहीं छोड़ कर चल दिये तो उन्होंने इन्हें अन्तिम चेतावनी दी थी कि "यदि आगे भी आपका यही कार्यकलाप (रुख) रहा तो हम आपके साथ भी वही वर्ताव करेंगे जैसा कि हमनें दूसरों के साथ किया है"।

ये कलकत्ते से चल तो दिये, किन्तु रात को गाड़ी में अपनी वर्थ पर लेटे २ इनके मस्तिष्क में उन्हीं दोनों लड़कों की उत्तेजित मुखाकृतियाँ बहुत देर तक चक्कर काटती रहीं। उनमें जीवन और उत्साह भरा हुआ था, यदि वे उचित मार्ग पर लग जाते तो कितने अच्छे बन सकते थे। इन्हें दुःख हुआ कि इन्होंने उनके साथ शीघ्रता में बातें कीं और कुछ रूखा व्यवहार किया। क्या अच्छा होता कि लम्बी बातचीत करने का अवसर मिलता! स्यात् ये उन्हें दूसरी दिशाओं में, भारत की सेवा और स्वतन्त्रता के मार्ग में, जिसमें कि साहस और आत्मत्याग के अवसरों की न्यूनता न थी, अपने होनहार जीवन को लगाने की बात समझा सकते। उस घटना के अनन्तर भी प्रायः ये उन लोगों का विचार किया करते हैं। इन्हें उनके नाम ज्ञात न हो सके और न बाद में कुछ पता ही लगा। ये कई बार सोचते हैं कि न जाने वे मर चुके हैं या अण्डमन के टापुओं की किन्हीं कोठरियों में बन्द हैं।

पञ्चदशाध्याय—

## समझौते का अन्त

दिसम्बर में प्रयाग में दूसरी किसान-कांफ्रेंस के पश्चात् ये कर्नाटक गये। प्रयाग से कर्नाटक जाते हुये ये अपनी पत्नी के साथ बम्बई गये थे। वह फिर रुग्ण हो गई थीं और वहीं इन्होंने उनके उपचार की व्यवस्था करदी। बम्बई में ही इन्हें ज्ञात हो गया कि भारत सरकार ने युक्त-प्रान्त के लिये एक विशिष्ट 'आदेश' (आर्डिनेंस) निकाल दिया है। सरकार ने निश्चय कर लिया था कि वह गांधीजी के आने की बाट न देखेगी, यद्यपि गांधी जी जहाज पर चल दिये थे और शीघ्र ही बम्बई आ जाने वाले थे।

ऐसे समाचार पाकर ये कर्नाटक का दौरा बन्द कर देने और प्रयाग को लौट जाने को उत्सुक थे। किन्तु पुनरपि इन्होंने कर्नाटक के कार्यक्रम को पूरा करने का ही निश्चय किया। इन्हें कुछ मित्रों ने गांधी जी के आने तक बम्बई में ही रुकने की इनको सम्मति दी। वे एक सप्ताह पश्चात् ही आने वाले थे। किन्तु यह असम्भव था। प्रयाग से पुरुषोत्तम दास टण्डन और अन्य लोगों के पकड़े जाने की सूचना इन्हें मिली। इसके अतिरिक्त

उसी सप्ताह में इनकी प्रादेशिक कान्फ्रेंस भी इटावा में होने वाली थी। इसलिये इन्होंने पहले प्रयाग जाने और पुनः एक सप्ताह के पश्चात् यदि स्वतन्त्र रहे तो, गांधी जी से मिलने तथा कार्यसमिति के अधिवेशन में सम्मिलित होने को बम्बई लौट आने का निश्चय किया। अपनी पत्नी को इन्होंने रोगशय्या पर बम्बई में ही छोड़ा।

इन्हें प्रयाग पहुंचने से पूर्व ही, छिउकी स्टेशन पर नये नियम के अनुसार एक आदेश मिला। प्रयाग स्टेशन पर उसी आदेश की दूसरी प्रतिलिपि इन्हें देने का प्रयत्न किया गया और इनके मकान पर भी एक तीसरे व्यक्ति ने ऐसा ही प्रयत्न किया। इस आदेशानुसार ये इलाहाबाद म्युनिसिपल सीमा के अन्दर नजरबन्द कर दिये गये और इनसे किसी भी सभा में सम्मिलित न होने, भाषण न करने, किसी समाचार पत्रादि में कोई लेख न लिखने को कहा गया। इनके साथी शेरवानी आदि पर भी ऐसे ही प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे।

दूसरे दिन प्रातः ही इन्होंने जिला-मजिस्ट्रेट (जिसने उक्त आदेश निकाले थे) को लिख दिया कि "मुझे क्या करना चाहिये या न करना चाहिये इसके सम्बन्ध में मैं आपसे आज्ञा लेना नहीं चाहता; मैं अपना साधारण काम साधारण रूप से करूँगा और अपने काम के सम्बन्ध में इस सप्ताह गांधी जी से मिलने तथा कार्य समिति—जिसका मैं सेक्रेटरी हूँ—की बैठक में सम्मिलित होने बम्बई जाने वाला हूँ।"

एक नयी समस्या और इनके सामने उपस्थित हो गयी। युक्तप्रान्तीय कांफ्रेंस, जो इटावा में होने वाली थी, पर यू० पी० सरकार की ओर से प्रतिबन्ध सा लगा दिया गया। यद्यपि ये बम्बई से यह विचार लेकर आये थे कि कांफ्रेंस को स्थगित कर दिया जाये क्योंकि एक तो वह गांधी जी के आने के दिनों में ही होनेवाली थी दूसरे सरकार से अभी संघर्ष भी टालना था। किन्तु इस प्रतिबन्ध ने स्थिति भयंकर बना दी और बड़ी ऊँच नीच के पश्चात् समय के अनुसार स्वाभिमान का भी ध्यान न करते हुये कांफ्रेंस के स्थगित करने का निश्चय हो पाया। तिस पर भी इटावा में फौज और पुलिस का भारी प्रदर्शन किया गया, कुछ भूले-भटके प्रतिनिधि, जो वहाँ पहुंच गये थे, पकड़ लिये गये और वहाँ लगी स्वदेशी-प्रदर्शिनी पर सेना ने अधिकार जमा लिया।

इन्होंने शेरवानी के साथ २६ दिसम्बर की प्रातः प्रयाग से बम्बई के लिये प्रस्थान करना निश्चित किया।

ज्यों ही ये रेल में बैठे, इन्होंने प्रातःकालीन समाचार-पत्रों में नये सीमा-प्रान्तीय आर्डिनेंस एवं अब्दुल गफ्फार खाँ तथा डाक्टर खान साहब आदि के पकड़े जाने का समाचार पढ़ा। बहुत शीघ्र ही इनकी गाड़ी बम्बई-मेल रास्ते के एक छोटे से स्टेशन इरादतगंज पर, जहाँ साधारणतया वह नहीं ठहरा करती थी, एकाएक ठहर गयी और इन लोगों को पकड़ने पुलिस अधिकारी वहाँ पहुंच गये। रेलवे लाइन के पास ही एक जेल की मोटर

खड़ी थी, और क़ैदियों की इस लारी में ये तथा शेरवानी प्रविष्ट हुए। वह तीव्र गति से चली और ये नैनी जेल जा पहुंचे। वह क्रिस्मस दिवस का प्रातःकाल था और पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट जो इन्हें पकड़ने आया था, अंग्रेज था, वह दुःखी एवं उदास दिखायी दिया। इन्हें उसके क्रिसमस त्यौहार के विगाड़ देने का दुःख हुआ।

इस प्रकार ये फिर उसी अपनी चिरपरिचित जेल में जा पहुंचे।

इनके पकड़े जाने के ५ दिन पश्चात् ही गाँधी जी बम्बई में उतरे। उन्हें सारे समाचार मिले जिससे उन्हें यहाँ की परिस्थिति का ज्ञान हो गया था और समझौते की कोई आशा न होने पर भी उन्होंने वायसराय लार्ड विलिंगटन से दो वार मिलने का असफल प्रयत्न किया।

४ जनवरी सन् १९३२ को गांधी जी व कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार पटेल भी पकड़ लिये गये तथा विना अभियोग सिद्ध किये राजवन्दी बना लिये गये। उसी दिन नैनी जेल में यू० पी० इमर्जेन्सी पावर-आर्डिनेंस के अनुसार जवाहरलाल जी व शेरवानी का अभियोग हुआ और शेरवानी को छः मास का कठिन कारावास और १५०) अर्थदण्ड तथा इन्हें २ वर्ष का कठिन कारावास और ५००) अर्थदण्ड (या बदले में छः मास का कारावास और) दिया गया। दोनों के अपराध एक से थे फिर भी दोनों को दिये गये दण्डों में कितना अन्तर! दण्ड सुनने के बाद ही शेरवानी ने मजिस्ट्रेट से पूछा कि "मुसल्मान

होने के विचार से तो मुझे कम दण्ड नहीं दिया गया है ?" उनके इस प्रश्न से वहाँ उपस्थित लोगों को बड़ी हंसी आयी और मजिस्ट्रेट कुछ उलझन में पड़ गया।

उस स्मरणीय दिन, ४ जनवरी को देश भर में बहुत सी घटनायें हुईं। प्रयाग उससे अछूता कैसे रहता। यद्यपि इनके छोटे से अहाते में बहुत थोड़े लोग गये किन्तु इनके पुराने साथी नर्मदाप्रशाद, बहनोई रणजित् पण्डित और चचेरे भाई मोहन-लाल नेहरू भी इनके पास पहुंच गये। बैरक नं० ६ की इनकी छोटी सी मित्र-मण्डली में लंका के इनके युवक मित्र वर्नार्ड एलू विहारे भी अचानक पहुंच गये। जो कि बेरिस्टर बनने के बाद इंगलैण्ड से अभी २ लौटे थे। जवाहरलाल जी की बहिन श्री विजयलक्ष्मी पण्डित ने उनसे कहा था कि आप जलूस आदि में सम्मिलित न हों। किन्तु जोश में आ कर वह कांग्रेस के एक जलूस में शरीक हो ही गये और एक 'ब्लैक मरिया' गाड़ी उन्हें भी जेल में ले गयी।

सारे देश में पूर्ण दमनचक्र चल पड़ा था। कांग्रेस व तत्संबंधी तथा उससे सहानुभूति रखने वाली भी सैकड़ों हजारों संस्थायें अनियमित घोषित कर दी गयी थीं।

बम्बई में इनकी पत्नी श्री कमला जी रोगशय्या पर पड़े २ आन्दोलन में भाग न ले सकने के कारण छटपटा रही थीं। माता जी व बहिन बड़े उत्साह के साथ आन्दोलन में कूद पड़ीं।

उनको शीघ्र ही एक २ वर्ष का कारावास मिल गया और वे भी जेल पहुंच गयीं। नये आने वालों के द्वारा या साप्ताहिक समाचार पत्रों के टूटे फूटे समाचारों से भी ये परिस्थिति की कल्पना कर लिया करते थे।

ये नाना प्रकार की विचार-धाराओं में वहा करते और नाना भाँति की समस्याओं में उलझे हुए कारागार-जीवन व्यतीत करने लगे।

## बरेली और देहरादून जेलों में

छः सप्ताह नैनी जेल में रहने के बाद इनका परिवर्तन बरेली जिला जेल में कर दिया गया। इनका स्वास्थ्य पुनः गड़बड़ रहने लगा। प्रायः प्रतिदिन ज्वर हो जाता था। चार मास बरेली जेल में रहने के पश्चात् जब गर्मी बहुत अधिक पड़ने लगी तब इन्हें देहरादून जेल भेज दिया गया। ये वहाँ निरन्तर लगभग १४ मास अर्थात २ वर्षीय कारावास के अन्तिम समय तक रहे।

निस्सन्देह इनको कुछ समाचार मिलने जाने वाले लोगों, पत्रों तथा साप्ताहिक समाचार पत्रों द्वारा मिलते रहते थे तथापि बाहर जो कुछ हो रहा था उससे अधिकतर ये अपरिचित ही रहे और मुख्य २ घटनाओं के विषय में भी इनकी धारणा बहुत अस्पष्ट थी।

जेल में इन्होंने अपने को एक नियमित दिनचर्या का अभ्यस्त बना लिया था और शारीरिक व्यायाम तथा कठोर मानसिक कार्य करके इन्होंने अपने स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने का

सदैव प्रयत्न किया। कार्य और व्यायाम का बाहर कुछ भी मूल्य हो जेल में तो वे आवश्यक थे। क्योंकि उनके बिना वहाँ कोई अपने मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को स्थिर नहीं रख सकता। दिनचर्या के कठोरता से पालनार्थ ये अपने दैनिक चौर करने के कार्य को भी प्रतिदिन केवल इसलिये ही पूरा करते थे कि जिससे कार्यक्रम ठीक रहे। क्योंकि साधारणतया जिन लोगों ने इन छोटी २ बातों को छोड़ दिया वे अन्य कई बातों में भी ढीले पड़ गये थे। दिन भर कठोर परिश्रम करने के पश्चात् शाम को पूर्णतया श्रान्त हो जाते और रात्रि में गाढ़ निद्रा का आनन्द लेते।

प्रायः ये पुस्तकाध्ययन में ही व्यस्त रहते। कभी एक प्रकार की पुस्तकें पढ़ते तो कभी दूसरे प्रकार की। किन्तु साधारणतया ये ठोस विषय की पुस्तकें ही पढ़ते थे। उपन्यास नहीं पढ़ते थे क्योंकि उपन्यास पढ़ने से मस्तिष्क में ढीलापन सा प्रतीत होने लगता है। जब कभी पढ़ते २ जी ऊब उठता तो लिखने बैठ जाते। इस दो वर्ष के कारावास में तो ये उस ऐतिहासिक पत्र-माला में लगे रहे जो इन्होंने अपनी पुत्री इन्दिरा के नाम लिखी और जिसका आर्य-भाषा संस्करण 'विश्व-इतिहास की झलक' के नाम से सस्ता साहित्य-मण्डल से प्रकाशित हो चुका है।

यात्रा-सम्बन्धी पुस्तकों का ये सदैव स्वागत करते थे, मुख्य-तया पुराने यात्रियों के यात्रा-वर्णन का जैसे ह्यूएनत्सांग, मार्को पोलो तथा इब्न बतूता आदि।

इस अध्ययन के साथ २ इनका ध्यान दूसरे देशों की ओर अधिक जाने लगा और वहाँ जितना भी हो सका ये विश्व-व्यापी मन्दी से ग्रस्त संसार की दशा का निरीक्षण और अध्ययन करने लगे। इस विषय की जितनी पुस्तकें इन्हें मिलीं उन्हें पढ़ते गये और जितना ही पढ़ते जाते थे उतना ही उसकी ओर आकर्षित होते जाते थे। इन्हें दिखायी दिया कि भारतवर्ष अपनी मुख्य समस्याओं और संघर्षों को लेकर भी इस विशाल विश्व-नाटक का, राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों के उस युद्ध का, जो सब राष्ट्रों के अन्दर और सब राष्ट्रों पर स्पष्ट हो रहा है, केवल एक भाग ही है। उस युद्ध में इनकी सहानुभूति कम्युनिज्म (साम्यवाद) की ओर अधिकाधिक होती गयी।

समाजवाद और कम्यूनिज्म की ओर ये दीर्घकाल से आकर्षित थे और रूस इन्हें बहुत पसन्द आता था। रूस की बहुत सी बातें इन्हें ना पसन्द भी हैं—जैसे सब प्रकार की विरोधी राय का निरंकुशता से दमन कर देना, सब को सैनिक बना डालना, और अपनी कई व्यवस्थाओं को कार्यरूप देने के हेतु अनावश्यक बल प्रयोग करना आदि।

अपने अध्ययन में इन पर उन विवरणों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा, जिन में सोवियत शासन के पिछड़े हुए मध्य एशियाई प्रदेशों की बड़ी भारी उन्नति का वृत्तान्त दिया गया था। अतः कुल मिला कर इनकी सम्मति रूस के पक्ष में ही रही और इन्हें सोवियत तथ्यों की उपस्थिति और उदाहरण

अंधकार एवं दुःखपूर्ण संसार में एक प्रकार प्रकाश और उत्साह प्रदायक वस्तु प्रतीत हुई।

इस प्रकार इन्होंने रूस, जर्मनी, इंगलैंण्ड, अमेरिका, जापान, चीन, फ्रांस, इटली और मध्य योरप में होने वाली घटनाओं का अध्ययन और उन्हें समझने का प्रयत्न किया। इस सम्बन्ध में इन्होंने अपने विचार भी 'मेरी कहानी' में स्पष्ट रूप से लिखे हैं।

इधर सितम्बर १९३२ में गांधी जी ने 'साम्प्रदायिक-निर्णय' में दलित-जातियों को अलग चुनाव के अधिकार दिये जाने के विरोध में 'आमरण-अनशन' करना निश्चित किया। जिसका समाचार मिलते ही ये बहुत उद्विग्न हो गये और अत्यन्त कठिनता से धैर्य धारण कर सके; क्योंकि उनसे अनेक विषयों में सैद्धान्तिक मतभेद होते हुए भी उनके प्रति इनका व्यक्तिगत प्रेम पर्याप्त प्रबल था। और इस विचार से इन्हें बहुत पीड़ा होती थी कि क्या अब उनके दर्शन न हो सकेंगे और उनके इंगलैंड जाते समय का विदाई-दर्शन क्या अन्तिम दर्शन होगा।

किन्तु पूना में एकत्रित हुए कुछ लोगों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये और ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ने उसे तत्काल स्वीकार कर लिया और तदनुकूल अपना पिछला निर्णय बदल दिया जिससे गांधी जी ने अनशन तोड़ दिया। फलतः जवाहरलाल जी को शान्ति प्राप्त हुई।

# धर्म-विचार

कतिपय मासानन्तर मई १९३३ में गांधी जी ने पुनः २१ दिन का उपवास आरम्भ किया। जिससे इन्हें बड़ा आघात पहुंचा। किन्तु ऐसा होना ही था आदि २ विचारों द्वारा इन्होंने अपने हृदय को सान्त्वना दी। किन्तु क्योंकि गांधी जी के ऐसे ये सारे कार्यक्रम प्रायः धर्मप्रेरणा के नामपर होते हैं अतः इनको धर्म के प्रति बड़ी झुंझलाहट सी हुई और धर्म के विषय में इन्होंने बहुत कुछ अपने विचार 'मेरी कहानी' में प्रकट किये हैं। जिनका सारांश यही है कि निस्सन्देह धर्म का जो अर्थ और धर्म के नाम पर जो कार्य कलाप धर्म के अन्धविश्वासियों में प्रचलित है उससे इनको बहुत घृणा है और यदि वास्तविक धर्म को देखा जाय तो आप उसके किसी प्रकार भी विरोधी नहीं जान पड़ते। फिर भी क्योंकि धर्म शब्द वर्तमान काल में एक गड़बड़ पैदा करता है अतः आपके विचार से उसके स्थान पर ईश्वर-विज्ञान, दर्शन-विज्ञान, आचार-शास्त्र, नीति-शास्त्र, आत्मवाद, आध्यात्मिक शास्त्र, कर्त्तव्य, लोकाचार आदि परिमित अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग अच्छा है। हम नहीं समझते कि यह कहाँ तक उचित है। क्योंकि गांधी जी ने शूद्र व दलित शब्दों के स्थान पर हरिजन शब्द का प्रयोग किया तो क्या उससे समस्या हल हो गयी। केवल शब्द परिवर्तन मात्र से कुछ नहीं होता। आवश्यकता है उसके उचित अर्थ और संगत व्याख्या के प्रचार की।

गांधी जी की 'धर्म' संबन्धी टिप्पणियों पर जवाहरलाल जी ने जो विचार प्रकट किये हैं वह भी इनका धर्म-शब्द के रूढ़िवादियों के अर्थ का दृढ संस्कार मात्र कहा जा सकता है क्योंकि ये कहते हैं—"यदि वह (गांधी जी) यों कहते कि वे लोग जो जीवन और राजनीति में से 'धर्म' को निकाल डालना चाहते हैं, 'धर्म' शब्द का मेरे (गांधी जी के) आशय से बहुत भिन्न कोई दूसरा ही आशय समझते हैं तो शायद यह अधिक सही होता।" ये शब्द स्पष्ट बतला रहे हैं कि बहुत सम्भव है जवाहरलाल जी ने जहाँ अनेकानेक विषयों के अनेकों ग्रन्थों का अध्ययन और मनन किया है वहाँ स्यात् भारतीय दर्शनों को छुआ तक नहीं अथवा उन्हें समझने का प्रयत्न नहीं किया; अन्यथा धर्म शब्द की गांधी जी की व्याख्या को उनकी अपनी न समझते। भारतीय साहित्य का प्रत्येक ग्रन्थ धर्म की वही व्याख्या करता है जो स्वयं जवाहरलाल जी को भी प्रिय है। तथा धर्म शब्द का अपना निजी अर्थ भी बहुत स्पष्ट और सर्वमान्य है।

धारणाद् धर्ममित्याहुः। जो धारण किया जाय या जिससे यह सारा संसार धारण किया हुआ है वह है धर्म। निस्सन्देह 'धर्म' की ऐसी उचित व्याख्यायें संस्कृत के ग्रन्थों में व संस्कृत के 'धर्म' शब्द की ही मिल सकती हैं। इंगलिश या अन्य किसी भाषा में नहीं और यही कारण है कि हमारे सुयोग्य विद्वान् चरितनायक की उक्त धारणा बन गयी। जैसा कि 'मेरी कहानी' के निम्न उद्धरण से स्पष्ट होता है:—

"धर्म की एक बहुत ही आधुनिक परिभाषा, जिससे कि धर्म भीरु व्यक्ति सहमत न होंगे, प्रोफेसर जान डेवी ने की है। उनकी सम्मति में 'धर्म वह वस्तु है जो लोक-जीवन के खण्ड खण्ड और परिवर्तनशील दृश्यों को समझने की शुद्ध दृष्टि देता है,' या फिर 'जो प्रवृत्ति व्यक्तिगत हानि होने की आशंका होने पर भी, और बाधाओं के विरोध में भी, किसी आदर्श लक्ष्य को पाने के लिये जारी रक्खी जाती है, और जिसके पीछे यह विश्वास हो कि वह सामान्य और स्थायी उपयोगिता वाली है वही स्वरूप में धार्मिक है।' यदि धर्म यही वस्तु है तब तो निश्चय ही उस पर किसी की भी कुछ आपत्ति नहीं हो सकती।

रोमाँ रोलाँ ने भी धर्म का ऐसा अर्थ निकाला है जिससे स्यात् संगठित मजहब के कट्टर लोग भयभीत हो जायंगे। अपने रामकृष्ण परमहंस के जीवनचरित्र में वह लिखते हैं—

'.......बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो सभी तरह के धार्मिक विश्वासों से दूर हैं, लेकिन वास्तव में उन में एक अति बौद्धिक चेतना व्याप्त रहती है, जिसे वे समाजवाद, साम्यवाद, मानव-हितवाद, राष्ट्रवाद या बुद्धिवाद भी कहते हैं। विचार का लक्ष्य क्या है, इस की अपेक्षा विचार किस कोटि का है, यह देख कर हम निर्णय कर सकते हैं कि वह धर्म-प्राप्त है या नहीं। यदि वह विचार प्रत्येक प्रकार की कठिनाई सह कर एकनिष्ठ लगन और प्रत्येक प्रकार के बलिदान की भावना (तैयारी) के साथ सत्य के

अन्वेषण की ओर निर्भयता पूर्वक ले जाता है, तो मैं उसे धर्म ही कहूँगा। क्योंकि धर्म के अन्दर यह विश्वास सम्मिलित है कि मानवीय पुरुषार्थ का ध्येय वर्तमान समाज के जीवन से उच्च, अपितु सारे मानव समाज के जीवन से भी उच्च है। नास्तिकता भी जब वह सर्वांशतः सच्ची बलवती प्रकृतियों से निकलती है और जब वह निर्बलता की नहीं अपितु शक्ति की एक मूर्त रूप होती है तो वह भी धार्मिक आत्मा की महान् सेना के प्रयाण में सम्मिलित हो जाती है।'

मैं नहीं कह सकता कि मैं रोमाँ रोलाँ की इन प्रतिज्ञाओं (शर्तों) को पूरा करता ही हूँ, किन्तु इन प्रतिज्ञाओं (शर्तों) पर तो इस महान् सेना का एक तुच्छ सैनिक बनने को मैं प्रस्तुत (तैयार) हूँ।"

## जेल से बाहर

३० अगस्त १६३३ को ये नैनी जेल* से मुक्त कर दिये गये क्योंकि माता स्वरूप रानी का स्वास्थ्य चिन्ता जनक था वैसे ये १२ सितम्बर को छूटते। इस प्रकार प्रादेशिक सरकार ने इन्हें १३ दिन पहले छोड़ दिया।

छूटने के कुछ दिन पश्चात् ही इनकी छोटी बहन कृष्णा की सगाई हो गई। और इनकी इच्छा थी कि शीघ्र ही विवाह भी हो जाय क्योंकि इन्हें भय था कि शीघ्र पुनः जेल जाना पड़ेगा।

---

*इससे पहले ही ये देहरादून से नैनी जेम आ गये थे।

माता की रुग्णता से अवकाश मिलते ही ये गांधी जी से मिलने पूना पहुंचे। परस्पर बहुत लम्बी बातचीत हुई और इन्होंने प्रत्येक विषय पर खुल कर विचार विनिमय किया और जो पत्र व्यवहार के रूप में भी चलता रहा तथा जो प्रकाशित भी हो गया था। इन्होंने लौटते हुये कुछ दिन बम्बई में बिताये।

बम्बई में अनेकों मित्रों व साथियों से मिले। प्रसिद्ध भारतीय नर्त्तक उदयशंकर भट्ट उन दिनों वहीं थे। वहाँ इन्होंने उनका नृत्य देखा और उससे आनन्द प्राप्त किया। नाटकादि देखना इनके लिये पिछले कई वर्षों से असम्भव सा था। अभी तक ये केवल १ बार ही टाकी देख सके हैं। हारमोनियम से इन्हें घृणा सी है। लिखते हैं—'मुझे आशा है कि स्वराज सरकार के प्रारम्भिक कामों में एक यह भी होगा कि वह इस भयानक वाद्य पर प्रतिबन्ध लगा दे।'

सितम्बर १६३३ के बीच में लगभग १ सप्ताह बम्बई और पूना में रहने के बाद ये लखनऊ लौट आये। इनकी माता जी अभी तक अस्पताल में थीं और उनकी दशा शनैः २ सुधर रही थी। लखनऊ में ये २-३ सप्ताह रहे। वहाँ इन्हें प्रयाग की अपेक्षा कुछ अधिक अवकाश मिलता था क्योंकि मुख्य काम दिन में २ बार अस्पताल जाना मात्र था। इन्होंने यह अवकाश का समय सामाचार-पत्रों में लेख लिखने में लगाया और ये सब लेख देश के लगभग सभी पत्रों में छपे। इनकी 'भारत किधर' शीर्षक लेखमाला पर जनता का पर्याप्त ध्यान गया। इसमें

इन्होंने विश्व की हलचलों पर भारत की परिस्थिति के साथ उनके सम्बन्ध को ध्यान में रख कर विचार किया था। इन लेखों का फारसी अनुवाद तेहरान और काबुल में भी छापा गया था।

माता जी अस्पताल में पड़ी २ ऊबती जा रही थीं अतः ये उन्हें प्रयाग वापिस ले गये। इसका एक कारण इनकी बहन कृष्णा का विवाह भी था।

अक्टूबर के ३रे सप्ताह में प्रयाग में यह अन्तर्जातीय विवाह 'सिविल मैरिज एक्ट' के अनुसार बड़ी सादगी से कर दिया गया।

विवाह के लिये जो निमन्त्रण पत्र छपाया गया था उसकी लिपि थी लेटिन (रोमन-अंग्रेजी) और भाषा हिन्दुस्तानी। बहुत कम लोगों के पास यह निमन्त्रण-पत्र भेजा गया था। अधिकतर लोगों को यह पसन्द नहीं आया। गांधी जी ने भी इसे पसन्द नहीं किया।

## भाषा व लिपि

इन्होंने रोमन लिपि इस लिये प्रयुक्त नहीं की थी कि ये उसके पक्ष में हो गये थे अपितु केवल मात्र यह जानना था कि उसका भिन्न २ प्रकार के लोगों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

लिपि के सम्बन्ध में इनके विचार नीचे के उद्धरण से स्पष्ट हो जाते हैं:—

"मैंने रोमन लिपि इसलिये नहीं प्रयुक्त की थी कि मैं उसके पक्ष में हो गया था, यद्यपि उसने मुझे बहुत दिनों से आकर्षित कर रक्खा था। टर्की और मध्य एशिया में रोमन लिपि की सफलता ने मुझे प्रभावित किया था रोमन के पक्ष में जो युक्तियाँ हैं उनमें पर्याप्त बल है, फिर भी मैं भारतवर्ष के लिए रोमन लिपि के पक्ष में नहीं हो गया था।

किसी भी भाषा के लिए जिसका प्राचीन काल उज्ज्वल रहा हो, लिपि का बदलना बहुत बड़ी क्रान्ति है, क्योंकि लिपि का उस साहित्य से बहुत गहरा सम्बन्ध रहता है। लिपि बदल दीजिए तो सामने कुछ और ही शब्द-चित्र दृष्टि गोचर होंगे, ध्वनि बदल जायगी, भाव बदल जायँगे। पुराने और नये साहित्य के बीच एक अटूट दीवार उठ खड़ी होगी। पुराना साहित्य एक दम विदेशी भाषा में लिखा हुआ सा जान पड़ेगा, ऐसी भाषा में जो मर चुकी हो। लिपि बदलने का जोखिम उसी भाषा में लेना चाहिए जिसका कोई उल्लेखनीय साहित्य न हो। भारतवर्ष में तो मैं ऐसे परिवर्तन का विचार भी नहीं कर सकता हूँ, क्योंकि हमारा साहित्य केवल सम्पन्न और अमूल्य ही नहीं अपितु हमारे इतिहास और विचार-परम्परा से सम्बद्ध है और हमारी सर्व साधारण जनता के जीवन के साथ उसका बड़ा गहरा नाता रहा है। हमारे देश पर इस तरह का परिवर्तन लाद देना एक क्रूर विच्छेद के समान होगा और सार्वजनिक शिक्षा के मार्ग में बाधक होगा।

किन्तु आज (१९३४ में) तो भारत में रोमन लिपि का प्रश्न सार्वजनिक चर्चा का विषय ही नहीं है। मेरी समझ में लिपि-सुधार की दृष्टि से जो अगला पग होना चाहिये, वह है संस्कृत भाषा से उत्पन्न चारों सहोदरा—हिंदी, बङ्गला, मराठी, गुजराती भाषाओं के लिये एक-सी लिपि बनाना। इन चारों भाषाओं की लिपियों का उद्गम एक ही है और इनमें एक दूसरे से भिन्नता भी विशेष नहीं है और इसलिए इन सब के लिए ही लिपि ढूँढ निकालने में कोई खास दिक्कत न होनी चाहिए। इससे ये चारों भाषा एक दूसरे के निकट आ जायेंगी।"

(मेरी कहानी ५वां सं० पृष्ठ ६१६)

बहिन के विवाह के बाद ही ये अपने पुराने मित्र और साथी श्री शिवप्रसाद गुप्त से मिलने बनारस गये। वे एक वर्ष से भी अधिक समय से रुग्ण थे। बनारस की इस यात्रा के अवसर पर हिंदी साहित्य की एक छोटी-सी संस्था की ओर से इन्हें मानपत्र दिया गया और वहाँ उसके सदस्यों से इन्होंने कुछ विस्तृत चर्चा की एवं हिंदी की कुछ आलोचना भी की जो बाद में पत्रों में विवाद व टिप्पणियों का विषय बन गई।

बनारस में इन्हें हिंदू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के सम्मुख व्याख्यान देने के लिए निमन्त्रित किया गया। इस निमन्त्रण को इन्होंने स्वीकार किया और एक महती सभा में इन्होंने भाषण दिया। जिसके सभापति पं० मदन मोहन मालवीय थे। उस व्याख्यान में इन्होंने साम्प्रदायिकता के बारे में बहुत कुछ कहा

और कठोर शब्दों में उसकी निन्दा की। उस समय इनके ध्यान में यह बात भी न रही कि जिस सभा के सभापति मालवीय जी बहुत दिनों हिंदू-महासभा के स्तम्भ रहे हों उसमें हिंदू महासभा पर टीका-टिप्पणी करना बहुत उचित न था। इस बात का इन्हें पीछे अनुभव हुआ और तदर्थ खेद भी हुआ।

इस भाषण का सार जब पत्रों प्रकाशित हुआ तो इस पर बड़ा होहल्ला मचा और हिन्दू-महासभा के नेताओं ने सब ओर से इनकी आलोचना करनी आरम्भ करदी जिससे ये चकित हो गये। किन्तु उससे इन्हें प्रसन्नता ही हुई क्योंकि इस कारण से इन्हें उस विषय पर अपनी बात कह लेने का अवसर मिल गया। इस बात पर ये कई मासों से, यहाँ तक कि जेल में भी, भरे हुए बैठे थे किन्तु इस विषय को छेड़ देने का कोई उपाय इन्हें नहीं सूझा था अतः यह अवसर आते ही इन्होंने हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता पर एक तर्कपूर्ण लेख लिखा, जिसमें इन्होंने यह बताया कि दोनों ओर की साम्प्रदायिकता सच्ची साम्प्रदायिकता नहीं थी, अपितु साम्प्रदायिक आवरण में ढकी हुई ठेठ सामाजिक और राजनीतिक संकीर्णता थी। दैवयोग से ये जेल में प्रत्येक प्रकार के भाषण और वक्तव्यों के लेखांश पत्रों में से काट कर एकत्रित करते गये थे अतः इनके पास इतनी आलोच्य-सामग्री उपस्थित थी कि उसका एक लेख में समाविष्ट करना कठिन था।

इनके इस लेख की भारतीय पत्रों में पर्याप्त ख्याति हुई। यद्यपि उसमें हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायवादियों के सम्बन्ध

में बहुत कुछ बातें थीं तथापि आश्चर्य है कि किसी भी ओर से उनका कोई उत्तर न दिया गया। हिन्दू महासभा के नेता जिन्होंने पहले इन्हें आड़े हाथों लिया था और इनकी अत्यन्त कटु-आलोचना की थी वे भी मौनालम्बन किये रहे। मुसलमानों की ओर से सर मुहम्मदइकबाल ने गोलमेज परिषद् सम्बन्धी इनकी बातों में सुधार करने का यत्न किया, किन्तु इनकी युक्तियों के विषय में उन्होंने भी कुछ नहीं कहा। उनको दिये गये अपने उत्तर में ही इन्होंने यह मत प्रकट किया था कि विधान सभा (कन्स्टीट्यूएण्ट असेम्बली) द्वारा ही राजनीतिक और साम्प्रदायिक दोनों विषयों का निर्णय होना चाहिए। तदनन्तर सम्प्रदायवाद पर एक या दो लेख इन्होंने और भी लिखे।

इन लेखों का जैसा स्वागत हुआ और बुद्धिमान् व्यक्तियों पर प्रकट रूप से जो कुछ उनका प्रभाव पड़ा, उससे इनका उत्साह बहुत कुछ बढ़ गया। वास्तव में इन्होंने यह अनुमान ही नहीं किया था कि साम्प्रदायिक भावना की तह में जो जोश छिपा रहता है उसे ये हटा सकेंगे। इनका उद्देश्य तो यह बताना था कि किस प्रकार साम्प्रदायिक नेता भारत और इंगलैण्ड के घोर प्रतिक्रियावादी सम्प्रदायों से मिले रहते हैं और वे वास्तव में राजनीतिक एवं उससे भी अधिक सामाजिक प्रगति के विरोधी होते हैं। उनका उद्देश्य यही रहता है कि सार्वजनिक क्षेत्र में आगे आये हुए कुछ छोटे २ दलों का भला हो जाये।

## समाजवादी विचार

इसके पश्चात् इन्होंने जबलपुर, देहली, अलीगढ़ आदि में राजनीतिक भाषण दिये जिनसे देहली में तो यह जनरव बड़े वेग से फैल रहा था कि भाषण के पश्चात् ही ये पकड़ लिये जायेंगे।

अक्टूबर ३३ के मध्य में प्रयाग में कांग्रेस कार्य-कर्त्ताओं की एक अनियमित बैठक बुलायी गयी। जिसमें अन्त में एक समाजवादी प्रस्ताव स्वीकृत किया गया।

इनके समाजवादी विचारों के प्रचार के प्रभाव ने कां० व० कमेटी के कुछ सदस्यों तक को घबरा दिया। यद्यपि वे लोग बिना आपत्ति के इनके साथ कार्य करते रहे किंतु पुनरपि वे अप्रसन्न से दिखने लगे और जब उनका यह विचार सम्मुख आया कि कांग्रेस व० कमेटी के सदस्य होने के कारण इनको ऐसा उचित नहीं तो इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। किंतु ये विवश थे जिस वस्तु को अपने कार्य का सब से महत्त्वपूर्ण अङ्ग समझते थे उसे कैसे छोड़ सकते थे। यदि दोनों बातों में एक छोड़नी पड़ती तो निश्चय ही कां० व० कमेटी से पृथक् हो जाते।

इधर घरेलू विघ्न-बाधायें अलग इन्हें व्याकुल किये रहती थीं। इनकी माताजी का स्वास्थ्य सुधर तो रहा था किंतु शनैः २। आय का कोई साधन न था व्यय पर्याप्त था अतः उस समय की बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति को सुधारने के हेतु इन्होंने अपनी पत्नी के आभूषणों के विक्रय का निश्चय किया जिसे इनकी पत्नी ने

पसन्द नहीं किया यद्यपि उसने १२ वर्ष से उन्हें नहीं पहना था। थापि स्यात् वे पुत्री को देने के लिये सुरक्षित थे।

इस प्रकार ये अपनी निजी कार्यों और तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति के सुधारने में लगे रहे। १५ जनवरी को अपनी पत्नी को दिखाने और बंगाल की दमनीय स्थिति के अध्ययन के विचार से, पत्नी सहित कलकत्ता गये। वहाँ डाक्टरों से मिलने के अतिरिक्त इन्होंने ३ सार्वजनिक भाषण दिये (जिन के कारण इन्हें कालान्तर में पकड़ कर इन पर अभियोग चलाया गया और २ वर्ष का कारावास दण्ड दिया गया)।

जिनमें जहाँ इन्होंने आतङ्ककारी कार्यों की भरपूर निंदा की वहाँ राजकीय दमन नीति की भी कठोर आलोचना की।

कलकत्ते से ये कवीन्द्र रवीन्द्र से मिलने के लिये शांतिनिकेतन गये।

लौटते हुए ये राजेन्द्र बाबू के साथ भूकम्प (जो कि १५ जनवरी को ही जब ये प्रयाग में ही थे तभी आ चुका था किंतु उसके भयंकर परिणामों का ज्ञान इन्हें कलकत्ता पहुंचने के पश्चात् भी दूसरे दिन हुआ था) से पीड़ित जनों की सहायता के प्रश्न पर विचार करने के लिये पटना ठहरे।

दूसरे दिन मुजफ्फरपुर गये। वहाँ से प्रयाग पहुंचे। वहाँ पहुंचते ही धन और सामान इकट्ठा करने का कार्य आरम्भ करा दिया।

कुछ ही दिन बाद इन्होंने भूकम्प के सम्बन्ध में एक वक्तव्य निकाला जिसके अन्त में धन की अपील थी। साथ ही इस में भूकम्प के प्रारम्भिक दिनों में विहार सरकार की अकर्मण्यता की भी आलोचना थी।

प्रयाग की भूकम्प सहायक समिति की ओर से ये विहार के भूकम्प पीडित स्थानों के निरीक्षण तथा सहायता सम्बन्धी आवश्यक कार्यों के लिये रिपोर्ट देने के लिये नियुक्त किये गये और ये अकेले ही तत्काल चल पड़े। १० दिन तक उन ध्वस्त और नष्ट भ्रष्ट प्रान्तों में घूमे। इस दौरे में इन्हें घोर परिश्रम करना पड़ा। इन दिनों इन्हें सोने को भी बहुत कम समय मिला। सुबह के ५ बजे से लगभग आधी रात तक ये लोग चलते ही रहते थे।

इनके दौरे का अन्तिम नगर मुंगेर था और ये लोग लगभग नैपाल की सीमा तक पहुंच गये थे।

मुंगेर में तो ये स्वयं फावड़ा लेकर मलवा हटाने में लग गये जिससे सहायक संस्थाओं के सब अगुआ टोकरियाँ और फावड़े ले-लेकर जुट पड़े और इन्होंने दिन भर खुदाई की।

११ जनवरी को दौरे से श्रान्त क्लान्त ये प्रयाग अपने घर पहुंचे। कठोर परिश्रम के इन दश दिनों ने इनका रूप बड़ा भयानक बना दिया था और इनके कौटुम्बिक जन इनके मुख को देखकर चकित हो गये। इन्होंने प्रयाग भूकम्प सहायक समिति के लिये अपने दौरे की रिपोर्ट लिखने का प्रयत्न किया किन्तु निद्रा ने आ घेरा और २४ घण्टे में लगभग १२ घण्टे सोये।

# पुनः कारावास

दूसरे दिन सायंकाल ये अपनी धर्मपत्नी सहित बरामदे में खड़े थे; पुरुषोत्तमदास टंडन इनके पास पहुंचे ही थे। इतने में एक मोटर आई और पुलिस का एक अधिकारी उसमें से उतरा। ये समझ गये कि समय आ गया और उसके पास जा कर इन्होंने कहा—"बहुत दिनों से आप का इन्तज़ार कर रहा था।" वह क्षमायाचना सा करता बोला "अपराध मेरा नहीं है, कलकत्ता से वारण्ट आया है।"

इस प्रकार ५ मास १३ दिन पश्चात् १२ फरवरी सन् १९३४ को पुनः एकान्त को पहुंचाये गये। उसी रात इन्हें कलकत्ता ले जाया गया। आरम्भ में इन्हें प्रेसीडेन्सी जेल में रक्खा गया और वहीं से इन्हें न्यायालय ले जाया जाता था।

दूसरे दिन अर्थात् १६ फरवरी को इन्हें २ वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया और इस प्रकार इनका ७ वीं वार का जेल जीवन प्रारम्भ हुआ।

प्रेसीडेन्सी जेल से इन्हें अलीपुर सेन्ट्रल जेल भेज दिया गया। और वहाँ इन्हें एक १० फुट लम्बी और ९ फुट चौड़ी छोटी सी कोठरी दी गयी।

अलीपुर जेल में एक मास तक रात दिन कोठरी में रहने के पश्चात् इन्हें अपने सहन के बाहर कुछ कसरत करने की सुविधा दी गयी।

जब तक इनका अभियोग चलता रहा तब तक तो कलकत्ते का दैनिक स्टेट्समैन इन्हें मिलता रहा किन्तु अभियोग समाप्त होते ही दूसरे ही दिन से वह बन्द कर दिया गया और साप्ताहिक स्टेट्समैन दिया जाने लगा साथ ही साप्ताहिक मैञ्चेस्टर गार्जियन भी। कालान्तर दैनिक स्टेट्समैन भी दिया जाने लगा।

## नैराश्य

अप्रैल में इन्हें जेल में ज्ञात हुआ कि गांधी जी ने सत्याग्रह युद्ध बन्द कर दिया। उसका कारण गांधीजी के वक्तव्य में था उन के एक मित्र का सत्याग्रह के लिये तैयार न होकर पुस्तकाध्ययन में लगे रहना। अब जवाहरलाल जी को बहुत निराशा हुई और जीवन दूभर हो गया। जीवन में इन्होंने कितने ही कठोर सत्य अनुभव किये हैं, उनमें सब से अधिक कठोर और दुःखदायी यह सत्य था कि "महत्त्वपूर्ण विषयों पर किसी का भरोसा करना उचित नहीं है, प्रत्येक मनुष्य को अपनी जीवन यात्रा में अपने ऊपर ही भरोसा रखना चाहिये, दूसरों पर भरोसा करना भयंकर निराशा और विपत्तियों को आमन्त्रित करना है।"

अलीपुर जेल के उन दुःखदायी दिनों में सभी प्रकार के विचार इनके मन में छाये रहते थे। और इन सब से बढ़कर एकान्त और सूने का वह भाव था जो जेल के दम घोटने वाले वातावरण से और इनकी छोटी सी एकान्त कोठरी के कारण से और भी बढ़ जाता था। यदि ये जेल से बाहर होते तो इन्हें जो

आघात पहुंचता वह क्षणिक होता और अत्यन्त शीघ्र नई परि-स्थितियों के अनुकूल बन जाते और अपने हृदय के उद्गार निकाल कर अपने मनोऽनुकूल कार्य कर के अपने हृदय को हलका कर लेते। पर जेल के अन्दर ऐसा नहीं हो सकता था। अतः इनके कुछ दिन बहुत बुरी तरह बीते। किन्तु पुनरपि सौभाग्य से इनका प्रसन्न स्वभाव प्रायः इनको नैराश्य के आक्रमणों से बचाता रहता है और अब भी ये अपने दुःख को भूलने लगें। इसके पश्चात् इनकी पत्नी इनसे मिलने गईं जिससे इन्हें प्रसन्नता हुई और इनकी एकाकीपने की भावना दूर हो गई और इन्होंने अनुभव किया कि कुछ भी क्यों न हो 'हम एक के दूसरे जीवन साथी तो हैं ही'।

षोडशाध्याय—

# पुनः देहरादून जेल में

अलीपुर जेल में इनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, वजन बहुत घट चुका था और कलकत्त की वायु तथा दिन-दिन बढ़ती हुई गर्मी इन्हें दुःखी कर रही थी। ७ मई को सायंकाल के समय देहरादून के लिये चल पड़े। इस परिवर्तन से इन्हें कुछ प्रसन्नता हुई किन्तु शीघ्र ही जब देहरादून पहुंच गये तब इन्हें ज्ञात हो गया कि अब वे सुविधायें नहीं रहीं जो पहले थीं। अर्थात् प्राकृतिक दृश्य भी अब दीवार ऊँची कर दी जाने के कारण नहीं दिखते थे, व्यायामादि के लिये पहले बाहर जाने की जो सुविधा थी वह भी अब की नहीं दी गयी।

ये तथा अन्य प्रतिबन्ध निराशाजनक थे जिससे ये बहुत खिन्न हुए।

उन दिनों इनका चित्त ठीक नहीं रहता था, घर व बाहर की चिन्तायें इन्हीं व्यथित रखती थीं। नींद ठीक से नहीं आती थी जो इनके लिये सर्वथा नयी बात थी। इन्हें नाना प्रकार के बुरे २ स्वप्न भी दिखने लगे थे। कभी २ नींद में चिल्ला उठते थे। एक बार तो यह साधारण से भी अधिक जोर से चिल्ला

उठे और जब चौंक कर उठे तो इन्होंने बिस्तर के पास जेल के २ सिपाहियों को खड़ा पाया। उन्हें इनके चिल्लाने से चिन्ता हो गई थी। इन्होंने स्वप्न में किसी को अपना गला घोटते हुए देखा था।

इस समय तक कांग्रेस नियमित घोषित की जा चुकी थी और अ० भा० कां० कमेटी का एक अधिवेशन पटना में हो चुका था। उसने जो प्रस्ताव स्वीकृत किया था वह इनके विचारानुसार कांग्रेस को पहले की स्वराज्यपार्टी से भी पीछे ले जाने वाला था। कुछ दिनों के पश्चात् कां० कार्य समिति ने एक ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत किया जिसका इनके हृदय पर बड़ा दुःखदायी प्रभाव पड़ा। यह कहा गया था कि यह प्रस्ताव निजी सम्पत्ति की जब्ती और वर्गयुद्ध के सम्बन्ध में होने वाली अनुत्तरदायित्वपूर्ण चर्चा को ध्यान में रखकर स्वीकृत हुआ है। और इस प्रस्ताव के द्वारा कांग्रेस वालों को बताया गया था कि करांची कांग्रेस के प्रस्ताव में "किसी उचित कारण या मुआवजे के बिना न तो निजी सम्पत्ति की जब्ती का ही और न वर्गयुद्ध का ही समर्थन किया गया है। वर्किंग कमेटी की यह भी राय है कि सम्पत्ति की जब्ती और वर्ग-युद्ध कांग्रेस के अहिंसा के सिद्धान्त के विरुद्ध हैं।" इस प्रस्ताव द्वारा निश्चय ही प्रत्यक्षरूप से कांग्रेस के समाजवादी दल पर आक्रमण किया गया था।

देहरादून में इनके विचारों का प्रवाह इन्हीं सब बातों की ओर था और वर्तमान परिस्थिति से खिन्न होकर ये भूतकाल

की बातों का, जब से इन्होंने सार्वजनिक कार्यों में कुछ भाग लेना आरंभ किया तब से राजनीतिक घटनाओं का, अवलोकन करने लगे। उसी समय इन्हें अपने इन सब विचारों, ऊहा पोह, के लिपिबद्ध करने का भी ध्यान हुआ और इस प्रकार जून सन् १६३४ में देहरादून जेल में इन्होंने अपनी आत्मकथा 'मेरी कहानी' लिखनी आरम्भ की और आठ मास तक, जब तक इसकी धुन सवार रही, लिखते रहे। प्रायः ऐसे अवसर आये जब इन्हें लिखने की इच्छा न होती। तीन बार ऐसा हुआ कि मास मास पर्यन्त ये कुछ न लिख सके। किन्तु पुनरपि इन्होंने इसे लिखते रहने का प्रयत्न किया और अन्त में उसे तत्कालीन स्थल तक पूर्ण भी किया जैसा कि पाठकों को ज्ञात ही है। भारती में भी इस 'मेरी कहानी' के अक्टूबर १६३६ से लेकर मई १६४४ तक (कुल १५००० के) पाँच संस्करण निकल चुके हैं।

इस 'मेरी कहानी' का अधिकांश एक विचित्र उद्विग्नता की दशा में लिखा गया था जब कि ये उदासी और मानसिक चिन्ताओं से दबे हुये थे और निस्सन्देह इसकी झलक इसमें आ गयी है। किन्तु इसके लेखन कार्य ने ही इन्हें तत्कालीन चिन्ताओं को भुलाने में सहायता दी। जब ये इसे लिख रहे थे तब इन्हें बाहर के पाठकों का तनिक भी ध्यान न था; ये अपने आपको सम्बोधित करते और अपने लाभ के प्रश्न बना कर उनके उत्तर देते थे। कभी २ तो इससे इनका मनोरञ्जन भी हो जाता था। यथा सम्भव ये बिना किसी लाग लपेट के स्पष्ट

विचार करना चाहते थे और सोचते थे कि भूतकाल का यह सिंहावलोकन इन्हें इस कार्य में सहायक होगा।

अन्तिम जुलाई के निकट इनकी पत्नी की दशा बड़ी तीव्र गति से बिगड़ने लगी और कुछ ही दिनों में वह चिन्ता जनक हो गयी। ११ अगस्त को इनसे एकाएक देहरादून जेल छोड़ने को कहा गया और उसी रात को पुलिस की निगरानी में ये प्रयाग भेज दिये गये। दूसरे दिन शाम को ये इलाहाबाद के प्रयाग स्टेशन पर पहुंचे और वहाँ इनसे जिला-मजिस्ट्रेट ने कहा—"आप अस्थायी रूप में मुक्त किये जा रहे हैं जिससे अपनी रुग्ण पत्नी को देख सकें।" उस दिन इनकी गिरफ्तारी का छठवाँ मास पूरा होने में एक दिन शेष था।

## ग्यारह दिन बाहर

परिवर्तन आकस्मिक था जिसके लिये ये किञ्चित् मात्र भी प्रस्तुत न थे। जेल की अपेक्षा यहाँ रहन-सहन का ढंग भी सर्वथा पृथक् था घर के सब आराम थे और भोजन भी अच्छा था किन्तु यह सब होते हुए भी पत्नी की भयावह दशा की चिन्ता इन्हें उद्विग्न कर रही थी। इनकी पत्नी अत्यन्त दुर्बल हो गई थी। शरीर अस्थिपञ्जर मात्र रह गया था। और यह विचार कि 'स्यात् वह इन्हें छोड़ जायगी' असह्य वेदना देने लगा। इस समय इनका विवाह हुए साढ़े अठारह वर्ष हो चुके थे। इनके चित्त में उस दिन से लेकर वर्तमान तक की वर्षों की स्मृतियाँ आने लगीं विवाह के समय इनकी आयु २६ वर्ष की थी और

कमला देवी लगभग १७ वर्ष की थीं। वह सांसारिक बातों से सर्वथा अनभिज्ञ निरी अबोध बालिका थी। तब न केवल इनकी आयु में अन्तर था अपितु इनके मानसिक दृष्टि-बिन्दु में भी। परन्तु ऊपर से गम्भीर होते हुए भी इनमें भी लड़कपन था। इन्होंने स्यात् ही कभी यह अनुभव किया हो कि इस सुकुमार और भावुक बाला का मस्तिष्क पुष्पवत शनैः २ विकसित हो रहा है और उसे सहृदयता, एवं कुशलता के साथ आश्रय देने की आवश्यकता है। दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित हो रहे थे और पर्याप्त मात्रा में परस्पर हिल मिल गये थे। किन्तु इनके दृष्टिपथ पृथक् २ थे और परस्पर अनुकूलता का अभाव था। इस विपरीतता के कारण कभी २ आपस में संघर्ष तक हो जाता था और कभी २ तुच्छ बातों पर भी बच्चों की भाँति छोटे २ झगड़े हो जाया करते थे जो चिरस्थायी तो न होते थे और तत्क्षण मेल मिलाप होकर समाप्त हो जाते थे। दोनों का स्वभाव तीव्र था। दोनों ही 'क्षणे रुष्टा' थे और था दोनों में ही अपनी बात रखने का आग्रह। तथापि इनका पारस्परिक प्रेम-भाव बढ़ता गया; यद्यपि मानसिक भेद शनैः शनैः ही कम हुआ। इनके विवाह के २१ मास के अनन्तर इनकी एक मात्र सन्तान पुत्री इन्दिरा उत्पन्न हुई थी।

इनके विवाह के साथ ही साथ देश की राजनीति में अनेक घटनाएँ हुईं और उनकी ओर इनका झुकाव बढ़ता गया। वे होमरूल के दिन थे। इनके पश्चात् ही पंजाब के मार्शल ला और

असहयोग का समय आया और ये सार्वजनिक कामों के आँधी-तूफान में अधिकाधिक फंसते गये। इन आन्दोलनों में इनकी तल्लीनता इतनी बढ़ती गयी थी कि ठीक उस समय जब कि इनकी पत्नी को इनके पूरे सहयोग की आवश्यकता थी इन्होंने अनजान में उसकी सर्वथा उपेक्षा कर उसे अपने निज के भरोसे छोड़ दिया। तो भी उसके प्रति इनका प्रेम बराबर बना ही नहीं रहा अपितु बढ़ता गया और इनके हृदय को, यह देखकर कि वह भी अपने प्रेमपूर्ण हृदय से इन्हें सदा सहायता देने को सन्नद्ध रहती है, बड़ी सान्त्वना मिलती थी। इनकी पत्नी ने इन्हें बल दिया किन्तु निस्सन्देह अपने प्रति इनकी उपेक्षा उसे अवश्य खटकती रही होगी।

तदनन्तर कमलादेवी की अस्वस्थता का समय आरम्भ हुआ और साथ ही इनका जेल-निवास। ये दोनों केवल जेल की मिलाई के समय में ही मिल पाते थे। सत्याग्रह-आन्दोलन ने उन्हें भी सैनिकों की प्रथम पंक्ति में ला खड़ा किया और उन्हें स्वयं जेल जाने में अपार प्रसन्नता हुई। ये एक दूसरे के और निकट आते गये। कभी २ होने वाली मिलाइयाँ अनमोल होती गयीं। ये उनकी बाट देखते रहते और मध्य के दिन गिनते रहते थे।

वैवाहिक जीवन के अठारह वर्ष! किन्तु कितने वर्ष जवाहर लाल जी ने जेलों में और कमलादेवी ने अस्पतालों और सेनिटोरियम में बिताये? और इस समय भी तो जेल का

जीवन व्यतीत करते हुए ही कुछ दिनों के लिये बाहर आये थे। अब इन्हें यह चिन्ता सताती थी कि जब उसकी इन्हें अत्यन्त आवश्यकता है तब कहीं वह इन्हें छोड़ तो न जायगी।

इन्होंने कमला की दशा के विषय में गांधी जी को एक पत्र लिखा और इस पत्र में भरे थे इनके हृदय के दबे हुए उद्गार। गाँधी जी को उससे बहुत दुःख हुआ था।

अन्त में ठीक ११ वें दिन २३ अगस्त को जिसकी पहले ही बहुत कुछ सम्भावना थी पुनः पुलिस की लारी इन्हें नैनी जेल पहुचाने के लिये आ गयी। पुलिस अधिकारी ने इन्हें बताया कि इनकी अवधि समाप्त हो गयी और इन्हें उसके साथ नैनी जेल जाना होगा। इन्होंने अपने मित्रों से विदाई ली। जैसे ही ये पुलिस लारी में बैठ रहे थे इनकी रुग्णा माता बाहें फैलाये हुए दौड़ी हुई आयीं। उनकी वह मुख-मुद्रा दीर्घकाल तक रह २ कर इनकी दृष्टि में घूमती रही।

## पुनः जेल में

पुनः नैनी जेल में प्रविष्ट हो गये। इस बार इनको उस पुरानी चिरपरिचित कोठरी में नहीं रखा गया जिसमें कुछ थोड़े से फूलों के पौदे थे। किन्तु इन्हें उस समय कोठरी की चिन्ता न थी चिन्ता थी पत्नी के स्वास्थ्य की। क्योंकि इनके दुबारा जेल पहुंचने से अवश्य उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ना था और पड़ा भी। कमलादेवी का स्वास्थ्य पुनः गिरने लगा। दो सप्ताह तक तो उनके स्वास्थ्य का समाचार इन्हें प्रतिदिन मिलता रहा किन्तु उनके

पश्चात् रोक दिया गया। क्योंकि पत्नी की दशा में कोई सुधार न होकर दिन पर दिन बिगाड़ ही हो रहा था अतः इन दिनों इनका व्याकुल रहना स्वाभाविक था। एक मास पश्चात् कभी २ इन्हें अपनी पत्नी से मिला दिया जाता। इन्हें यह भी कहा गया कि ये अपनी कारावास की अवधि के शेष दिनों में यदि राजनीति में भाग न लेने का अलिखित ही आश्वासन दे दें तो इन्हें अपनी पत्नी की सेवा सुश्रूषा के लिये छोड़ा जा सकेगा। किन्तु यद्यपि उस समय राजनीति से स्वयं ही इन्हें घृणा सी हो गयी थी तथापि इनके लिये यह असम्भव था कि ऐसा कोई आश्वासन देते और जिसके लिये ऐसा करते उसे भी तो इस कार्य से आघात ही पहुंचता जैसा कि जब अक्तूबर के आरम्भ में इन्हें कमलादेवी से मिलाया गया तो उन्होंने ही ज्वर की दशा में भी इनसे लौटते समय सहासपूर्ण मुस्कान के साथ देखकर नीचे झुकने का संकेत किया और जब ये उनके निकट जाकर झुके तो उन्होंने इनके कान में कहा, "सरकार को आश्वासन देने की यह क्या बात है? ऐसा कदापि न करना"। धन्य है वीर पुरुष की वीर पत्नी को।

कमला देवी की गिरती हुई दशा को देखते हुए उन्हें भुवाली भेजने का निश्चय किया गया और जिस दिन वे भुवाली जाने वाली थीं उसके एक दिन पहले इन्हें उनसे मिलाने ले जाया गया। इनके हृदय में रह रह कर यह प्रश्न उठता था कि 'अब पुनः दोबारा कब भेंट होगी और होगी भी कि नहीं?'

कमला जी के भुवाली जाने के लगभग ३ सप्ताह अनन्तर इन्हें भी नैनी जेल से अलमोड़ा जेल भेज दिया गया जिससे ये उनके अधिक निकट रह सकें। भुवाली मार्ग में ही पड़ता था अतः अलमोड़ा जाते समय भुवाली में इन्होंने पुलिस की गारद के साथ कुछ घंटे बिताये वहाँ कमला जी की दशा में कुछ सुधार देखकर इन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई और उन से विदा लेकर ये आनन्द-पूर्वक अपनी अलमोड़ा तक की यात्रा पूरी कर सके।

अलमोड़ा जेल में एक मास रहने के पश्चात् कमला जी को देखने के लिये इन्हें ले जाया गया और तदनन्तर प्रायः प्रति तीसरे सप्ताह उनसे ये मिलते रहे।

उधर इनकी माता जी को भी रोग ने नहीं छोड़ा था वे उपचार के लिये बम्बई गई हुई थीं। अचानक इन्हें लगभग जनवरी के मध्य में उन्हें लकवा मार जाने का तार मिला। इससे इनके हृदय को जो आघात पहुचा उसकी कल्पना भी करना कठिन है। किन्तु उनकी दशा में शीघ्र ही कुछ सुधार हो जाने से इन्हें कुछ धैर्य हुआ।

इन सब बाह्य और आन्तरिक चिन्ताओं के विवेचन के साथ जैसा कि पहले लिखा जा चुका है जवाहरलाल जी अपनी जीवनी 'मेरी कहानी' को लिखते रहे और उसकी पहली समाप्ति १४ फरवरी १६३५ को इन्होंने अलमोड़ा जेल में की जिसमें इन्होंने न केवल अपनी जीवनी के रहस्यों को ही जनता के सम्मुख रख दिया है अपितु राजनीतिक व सामाजिक विवेचन भी

पर्याप्त विस्तार से किया है। निस्सन्देह बिना उक्त-विवेचन के इनके जीवन को प्रत्यक्ष समझने में अत्यन्त कठिनाई होती, इनकी वह आत्मकथा पूर्ण न होती। हम इस संक्षिप्त जीवनी में उन विवेचनों को स्थान न दे सकते थे अतः पाठकों से क्षमायाचना-पूर्वक अनुरोध करते हैं कि वह जवाहरलाल जी को पूर्ण रूपेण जानने के लिये उनकी बृहत् आत्मकथा अवश्य पढ़ें। अस्तु, १४ नवम्बर १९३४ को इनकी आयु के ४५ वर्ष इसी अलमोड़ा जेल में पूर्ण हो चुके थे।

तदनन्तर इनकी पत्नी भुवाली से उपचारार्थ यूरोप गयीं जिससे इनका मिलना बन्द हो गया और अलमोड़ा जेल में वे शेष दिन और दुःखपूर्ण व्यतीत होने लगे।

## पत्नी-वियोग

एकाएक ४ सितम्बर १९३५ को ये अपनी मुक्ति की अवधि के साढ़े पाँच मास पूर्व ही मुक्त कर दिये गये। इसका एक मात्र कारण इनकी पत्नी की दशा का चिन्तनीय होना था।

मुक्त होते ही ये अपनी पत्नी के पास पहुंचने के लिये आकाशमार्ग से चल पड़े। वे उस समय स्वार्ट-स्वाल्ड (जर्मनी) के वीडनवीलर स्थान पर अपना उपचार करा रहीं थीं।

वीडनवीलर पहुंच कर इन्होंने पत्नी की उपचर्या के साथ २ अपनी आत्मकथा (जो अलमोड़ा जेल में पूर्ण हो चुकी थी) में कुछ पंक्तियां और बढ़ाई तथा (प्रथमसंस्करण की) भूमिका लिखी।

इनकी यह 'मेरी कहानी' अंग्रेजी में थी और यह सर्व प्रथम सन् १९३६ में इंगलैण्ड से प्रकाशित हुई थी।

तदनन्तर सन् १९४० में इन्होंने इसमें 'पांच साल के बाद' नाम का एक अध्याय और बढ़ाया जिसे हम एक दुःखद अध्याय कह सकते हैं।

लासेन में २८ फरवरी १९३६ को इनकी पत्नी का देहान्त हो गया। उस समय ये उनके पास ही थे। इसके थोड़े दिन पहले इनको अपने दुबारा कांग्रेस के सभापति चुने जाने का समाचार मिल चुका था अतः ये शीघ्र ही विमान द्वारा भारतवर्ष को लौट पड़े।

वहाँ से चलने से कुछ दिनों पहले इन्हें एक सन्देश मिला था कि जब ये रोम होकर निकलें तो उस समय सिन्योर मुसोलिनी (तत्कालीन व अन्तिम इटली का सर्वे सर्वा) इनसे मिलना चाहते हैं। निस्सन्देह फासिस्ट शासन का विरोध होते हुये भी ये साधारणतया मुसोलिनी से मिलना पसन्द करते और उस असाधारण व्यक्ति के विषय में निजी जानकारी प्राप्त करते किन्तु उस समय ये किसी से मिलना न चाहते थे। उस समय अबीसीनिया पर इटली का आक्रमण हो चुका था और इन्हें भय था कि इनकी मिलाई का फासिस्टों की ओर से प्रचार करने में अवश्य दुरुपयोग किया जायगा। अतः इन्होंने अपनी मिलने की असमर्थता प्रकट की। किन्तु इन्हें रोम रुकना पड़ा क्योंकि हालैण्ड की के० एल० एम० कम्पनी के जिस विमान द्वारा ये

यात्रा कर रहे थे वह वहाँ रात भर रुका था। ज्यों ही ये रोम पहुंचे एक उच्च अधिकारी इनसे मिले और इन्हें शाम को सिन्योर मुसोलिनी से भेंट करने का निमन्त्रण दिया और इन्हें बताया कि सारा प्रबन्ध हो चुका है। इन्हें महान् आश्चर्य हुआ। इन्होंने कहा कि 'मैं तो प्रथम ही क्षमा-याचना के लिये कहला चुका हूँ'। लगभग एक घण्टे तक चर्चा चलती रही और मिलने का समय आ गया किन्तु अन्त में इनकी ही बात रही और ये मुसोलिनी से नहीं मिले।

## कांग्रेस से उद्विग्नता

भारत लौटते ही ये राष्ट्रिय कार्य में व्यस्त हो गये। सन् १९३६ के दिसम्बर में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन का सभापतित्व इन्होंने ही किया। किन्तु उस समय की पारस्परिक कटुता विचार-भिन्नता व संघर्ष ने इन्हें बहुत व्यथित कर दिया और एक बार तो इन्होंने राष्ट्रपति पद से त्यागपत्र तक दे देने का निश्चय कर लिया था किन्तु कुछ ऊँच नीच सोचकर रुक गये थे।

उस समय सन् १९३५ के नवीन शासन विधान के प्रादेशिक भाग वाला अंश कार्य रूप में परिणत हो रहा था। यद्यपि ये और कांग्रेस भी इस विधान की विरोधी थी और उसे अस्वीकृत कर चुकी थी तथापि देहली में होने वाले अ० भा० कां० कमेटी के विशेष अधिवेशन ने इनका तीव्र विरोध होने पर भी निर्वाचन में भाग लेने का निश्चय किया। अतः उस निश्चय के अनुसार

इन्होंने कांग्रेसी उम्मीदवारों की सफलता के लिये समस्त भारत का परिभ्रमण किया। यह दौरा इनका तूफ़ानी दौरा कहा जाता है इसमें इन्होंने ४ मास के अन्दर २ लगभग ५० हज़ार मील की यात्रा की थी। इसमें सर्व प्रकार के यानों से काम लिया था और प्रायः ऐसे स्थानों में भी ये पहुंचे थे जहाँ पहुंचने के कोई ठीक साधन न थे। यह यात्रा, विमान में, रेल में, मोटर कार में, लारी में, भिन्न २ प्रकार की घोड़ा-गाड़ियों में, बैल-गाड़ियों में, साइकिल पर, हाथी पर, ऊँट पर, स्टीमर पर, पैडल बोट पर, डोंगी में और पैदल चल कर इन्होंने की थी। साथ में लाउड-स्पीकर (ध्वनिविस्तारक) यन्त्र रखते थे और दिन भर में कोई एक दर्जन सभाओं में बोलते थे। सड़कों पर एकत्रित जन-समुदाय को जो सन्देश देते सो अलग।

उस समय ये भारत की उत्तरी सीमा से लेकर दक्षिण के समुद्र तट तक एक स्थान से दूसरे स्थान तक दौड़ते फिरे। मध्य में कठिनता से कुछ आराम मिला होगा। निस्सन्देह उस समय की कांग्रेस की सफलता का अधिकांश श्रेय इन्हीं को है यदि इन्होंने अनथक परिश्रम करके सारे देश में कांग्रेस का सन्देश न पहुंचाया होता तो स्यात् ही कांग्रेस को इतनी सफलता मिलती।

---

सप्तदशाध्याय—

# बर्मा-भ्रमण

सं० १९९४ (सन् १९३७) की ग्रीष्म-ऋतु में ये बर्मा और मलाया गये। यद्यपि इन्हें वहाँ आराम मिलना तो कठिन था, क्योंकि जहाँ २ ये गये भीड़ इनके पीछे लगी रही, तथापि यह वायु-परिवर्तन इनके लिये सुखदायी था।

तब भारत में अधिकतर प्रदेशों में कांग्रेसी मंत्रि-मण्डल शासन चला रहे थे और जनता को बहुत कुछ धीरज हुआ था किन्तु शनैः २ इच्छायें पूरी न होती देख सर्वसाधारण में ही नहीं अपितु कांग्रेसी क्षेत्रों में भी असन्तोष बढ़ने लगा था। ये स्वयं उससे असन्तुष्ट थे और इन्होंने अप्रैल १९३७ में गांधी जी को लिखे गये अपने एक पत्र में इस स्थिति की कटु आलोचना की थी।

यह असन्तोष बढ़ता ही गया और कांग्रेस के अधिक नरम और अधिक उग्र दलों में तीव्र मतभेद पैदा हो गया जो पहली बार अ० भा० कां० कमेटी के अक्टूबर १९३७ के अधिवेशन में प्रकट हुआ जिससे गांधीजी को बहुत कष्ट हुआ। बाद में उन्होंने एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने तत्कालीन-राष्ट्रपति के रूप में किये गये इनके कुछ कार्यों से अप्रसन्नता प्रकट की।

ऐसी स्थिति में ये कांग्रेस के सभापति तो दूर कार्यसमिति के सदस्य के रूप में रह कर भी कार्य करते रहना उचित न समझ रहे थे किन्तु क्योंकि पुनः निर्वाचन का समय निकट था अतः इन्होंने अल्पकाल के लिये संकट उत्पन्न करना उचित न समझा। यद्यपि दूसरे वर्ष पुनः इन को निर्वाचित करने की चर्चा चल रही थी किन्तु इन्होंने पुनः न खड़े होने का निश्चय कर लिया था। उस समय इन्होंने एक युक्ति चली। कलकत्ते के 'माडर्नरिव्यू' में इन्होंने एक लेख विना नाम का छपवाया जिसके लेखक ये स्वयं थे और इन्होंने उस लेख में अपने दुबारा चुने जाने का विरोध किया था। यह कोई नहीं जानता था कि यह लेख इन्हीं का लिखा हुआ था। स्वयं सम्पादक भी। और जब तक जानगुन्थर ने अपनी पुस्तक 'इनसाइड-एशिया' में इसकी चर्चा न की तब तक बहुत ही कम लोग सचाई जान सके थे।

हरिपुरा अधिवेशन के सभापति सुभाष बोस चुने गये। अतः इन्हें अब बाहर जाने को अवकाश मिला और इन्होंने शीघ्र ही योरप जाने का निश्चय किया। अपनी पुत्री इन्दु को देखने की इच्छा के साथ २ अपने श्रान्त और उद्विग्न मस्तिष्क को शान्ति पहुंचाने की भी इनकी इच्छा थी।

## योरप-प्रस्थान

जून १९३८ में ये विमान द्वारा बर्सीलोना पहुंचे। उस समय योरप में संघर्ष हो रहा था और महान् द्वितीय विश्वयुद्ध का बीजपात हो चुका था। बर्सीलोना में ये पांच दिन तक रहे और

वहाँ रात में होने वाली बम वर्षा को इन्होंने अपनी आंखों से देखा।

वहाँ से ये इंगलैण्ड गये और वहाँ एक मास रहे। अन्त में बहुत से स्वप्न-भंग करके ये योरप से दुःखी और उदास होकर लौटे। लौटते हुये मार्ग में मिश्र में ठहरे जहाँ मुस्तफा नहास-पाशा और वफ्द पार्टी के अन्य नेताओं ने इनका हार्दिक स्वागत किया।

भारत लौटने पर इन्हें उन्हीं पुराने मतभेदों और पारस्परिक संघर्षों का सामना हुआ। और उससे इन्हें अत्यन्त सन्ताप होता था।

## कांग्रेस से उपरामता

१६३६ के कांग्रेस के चुनाव ने इन्हें बहुत दुःखी कर दिया और उस समय इनका उत्साह मन्द पड़ चुका था। उस समय इन्होंने कार्य-समिति से भी त्यागपत्र दे दिया था। और यह अपने को नितान्त एकाकी अनुभव करने लगे थे।

पुनरपि इन्होंने अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद् के लुधियाना अधिवेशन का सभापतित्व किया और इस प्रकार अर्ध-सामन्ती देशी रियासतों के प्रगतिशील आन्दोलनों से इनका और भी घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया।

तत्कालीन बनी राष्ट्र निर्माण समिति का सभापति भी इन्हें चुना गया। यह समिति कांग्रेसी प्रादेशिक सरकारों के सहयोग से बनी थी। इस की २६ उपसमितियाँ स्थापित की गई थीं।

## लंका तथा चीन-यात्रा

सं० १६९६ की ग्रीष्म ऋतु में ये कुछ दिनों के लिये लंका गये क्योंकि वहाँ भारतीय निवासियों और सरकार के मध्य कुछ झगड़ा पैदा हो गया था। वहाँ इनका हार्दिक स्वागत किया गया। स्वागत करने वालों में सरकारी (लंका-निवासी) सदस्य भी थे।

१६३६ के अगस्त मास में इन्होंने विमान द्वारा चीन को प्रस्थान किया। चीन की यात्रा करने की इनकी बहुत प्रबल इच्छा थी। दो दिन के अन्दर २ ये चुंगकिंग पहुंच गये। चीन में लगभग २ सप्ताह ही यह रह पाये क्योंकि अन्त में योरप में युद्ध का बिगुल बज चुका था। चीन के महान् पुरुष मार्शल च्यांगकाई शेक और मैडम च्यांगकाई शेक से ये कई बार मिले और इन्होंने अपने २ देशों के वर्तमान और भविष्य पर विचार विनिमय किया। और जब ये भारत लौटे तो चीन और चीनी लोगों के पहले से भी प्रशंसक बनकर लौटे।

इधर भारत बिना अपनी इच्छा के ही युद्ध-राष्ट्र घोषित किया जा चुका था और युद्ध संचालन का भार इस पर भी बिना चाहे आ पड़ा था। अतः कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलों ने इस बात पर कि बिना हमारी सम्मति के हमें युद्ध में घसीटा जा रहा है अतः हम उसमें सम्मिलित नहीं हो सकते—त्यागपत्र दे दिये और उन प्रदेशों में गवर्नरी राज चलने लगा। कांग्रेस ने केन्द्र में लोक-तन्त्रीय राष्ट्रिय अस्थायी सरकार की मांग की किन्तु ८ अगस्त १६४० को वाइसराय ने अपने उत्तर में उसे ठुकरा दिया।

# द्वितीय काश्मीर-यात्रा

जुलाई में २३ वर्ष के पश्चात् जवाहरलाल जी पुनः काश्मीर गये और १२ दिन तक वहाँ रहे थे।

फिर वहाँ से लौटने पर इन्होंने प्रयाग में जैसा कि पहले लिखा जा चुका है—अपनी 'मेरी कहानी' का 'पाँच साल के बाद' नामक नवीन अध्याय लिखा और वह उसी दिन समाप्त किया जिस दिन (८ अगस्त १६४० को) वाइसराय ने कांग्रेस की मांग का उत्तर दिया था।

# ३ वर्षीय कारागार

शनैः २ सरकार कांग्रेस को पुनः कुचलने का चक्र चलाने लगी और ८ अगस्त सन् १६४२ में जब कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकृत किया तो सरकार ने बम्बई में ही, जहाँ अ० भा० कां० कमेटी का अधिवेशन हुआ था, कांग्रेस के सारे कार्य-कर्त्ताओं को पकड़ लिया। जवाहरलाल जी भी उनके साथ पकड़ लिये गये।

पर्याप्त समय तक यही पता नहीं चला कि जवाहरलाल जी व अन्य बड़े २ नेता कहाँ पर रखे गये हैं और नाना प्रकार की भ्रमात्मक बातें सुनने में आने लगीं। कोई कहता अमेरिका भेज दिये गये कोई कहता इंगलैण्ड आदि २। बहुत दिनों बाद पता चला कि ये अहमद नगर जेल में हैं। अन्त में ३ वर्ष के लगभग जेल-जीवन बिताने के पश्चात् कार्यसमिति के अन्य सदस्यों के साथ ये भी 'वेवेल-योजना' के आधार पर मुक्त हुए।

अष्टादशाध्याय—

# अब हमारे मध्य में

अब कारागार से छुटने पर बम्बई आदि जिन-जिन नगरों में ये पहुचे इनका अभूत-पूर्व स्वागत किया गया। निस्सन्देह आज का भारत का एक मात्र नेता (गांधी जी के पश्चात्) यदि कोई है तो जवाहरलाल। फिर भला इनका ऐसा स्वागत क्यों न हो। बम्बई में इनके स्वागत व जलूस की फिल्म भी बनी जो सारे भारत में भारत सरकार द्वारा प्रदर्शित करायी गयी। लाहौर आदि नगरों में इनके व्याख्यान सुनने व इनके दर्शनों के लिये कई लाख जनता एकत्रित हो गयी थी।

शिमला में वेवेल-योजना के असफल हो जाने पर आप वहाँ से काश्मीर गये और वहाँ कुछ दिन रह कर मुख्य २ नगरों में होते हुये प्रयाग पहुंचे। आपने अपने व्याख्यानों में बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता की कटु आलोचना की और मुस्लिम-लीग तथा हिन्दूमहासभा को हलुवा-खाऊ लोगों की संस्था बताया।

अपने व्याख्यानों में सब से पहले इन्होंने ही अगस्त आन्दोलन की यथार्थता प्रकट की और इसका समर्थन किया

तथा नेताजी जी सुभाष बोस (जब उनका देहान्त (?) नहीं हुआ था) के विना शर्त भारत को सौंपने की आवाज़ उठाई थी और आप ही ने सुभाष बाबू की राष्ट्रीय सेना के बन्दियों के साथ उचित व्यवहार किये जाने का प्रश्न अखिल भारतीय बना दिया है ।

बम्बई में सितम्बर १९४५ में जो अ० भा० कां० कमेटी का अधिवेशन हुआ था उसमें आपने उक्त विषय का एक प्रस्ताव भी रक्खा था जो स्वीकृत हुआ । अब तो आपके प्रयत्नों से कांग्रेस ने एक रक्षा-समिति बना दी है जो उक्त सेना के अफसरों पर चलने वाले अभियोगों में पैरवी आदि का कार्य कर रही है। जिसके ये भी एक सदस्य हैं और इन्होंने सारे भारत में इस प्रश्न को फैला दिया है । इन्हीं के मुख्य प्रयत्न से प्रथम अभियोग के अभियुक्त कप्तान शाहनवाज़, कप्तान सहगल और ले० ढिल्लन मुक्त हुए ।

ता० ३ नवम्बर को देहली में एक विराट सभा में १ लाख से अधिक धन की थैली इन्हें भेंट गई । आ० हि० सेना के प्रथम अभियोग की पहली पेशी में आपने २३ वर्ष पश्चात् वकील के वेष में ता० ५ नवम्बर सन् १९४५ को भाग लिया था ।

६ नवम्बर को आप वायुयान द्वारा नई देहली से राष्ट्रिय-योजना समिति का प्रधानत्व करने के लिये बम्बई गये थे ।

अब आप देश में जहाँ भी जाते हैं वहाँ अत्यन्त प्रभावशाली देशोद्बोधक व्याख्यानों द्वारा लाखों की संख्या में उपस्थित

हुई जनता को कांग्रेस के और सन्निकट लाते हैं और वर्तमान प्रादेशिक व केन्द्रीय धारा-सभाओं के निर्वाचन में कांग्रेसी उम्मीद-वारों को वोट देने का प्रबल समर्थन कर रहे हैं। निस्सन्देह पिछले निर्वाचनों की भाँति अब की भी धारा-सभाओं में कांग्रेस की सफलता का अधिकांश श्रेय आप ही को है।

अब की आपने साम्प्रदायिकों के साथ २ गत आन्दोलन में कांग्रेस का साथ न देने वाले कम्यूनिस्टों व रायवादियों को भी आड़े हाथों लेना आरम्भ कर दिया है। यद्यपि स्वराज्य के पश्चात भारतीय शासन की जो रूपरेखा आपने पिछले दिनों अपने एक वक्तव्य में खींची है और जिसे कांग्रेस ने अपने चुनाव-घोषणा-पत्र के रूप में स्वीकार कर प्रचारित किया है वह आपके समाज-वादी विचारों के अनुकूल ही है और अब निस्संकोच रूप में हम कह सकते हैं कि कांग्रेस में गांधी-युग जवाहर-युग के रूप में उपस्थित हो रहा है।

अब सन् १९४५ ई० समाप्त हो चुका और सं० २००२ वि० भी समाप्त होने को है। हमारे चरितनायक की आयु का ५६ वां वर्ष भी पूर्ण हो चुका अर्थात् वर्तमान-कालीन तो दूर प्राचीन-काल के हिसाब से भी अब ये तीसरेपन में प्रवेश कर चुके हैं जिसमें आजकल मनुष्य की गति विधि शिथिल प्रायः हो जाती है किन्तु हमारे नायक की गति में शिथिलता नहीं अपितु पूर्वापेक्षा और अधिक तीव्रता है। उत्साह व साहस नवयुवकों से भी अधिक है एवं यद्यपि दीर्घकालीन कारागार-निवास ने

शरीर पर अवश्य वृद्धावस्था के चिह्न स्पष्ट प्रकट कर दिये हैं किन्तु मन अब भी युवा है और नेतृत्व के गुणों का और अधिक विकास हुआ है।

अभी के व्याख्यानों में आप ने बंगाल-दुर्भिक्ष का कारण सरकारी अधिकारियों का कुप्रबन्ध प्रकट किया है और कहा है कि राष्ट्रीय सरकार उन लोगों को कभी नहीं क्षमा करेगी जिन्होंने देश में लाखों प्राणियों के भूखों मरते हुए भी गुलछर्रें उड़ाये हैं और अन्न को बरबाद किया है तथा अतिलाभप्राप्ति के लिये लाखों मन अन्न रोक कर दरिद्र जनता को भूखों मारा है।

आप ने देश-वासियों विशेषतः विद्यार्थियों को सुसंगठित और अनुशासित होने का आदेश दिया है और कुछ ही समय में होने वाले महान् परिवर्तनों के लिये सुसज्जित रहने की चेतावनी दी है।

पाठको ! नवयुवक-हृदय-सम्राट्, देश के प्राण, श्री जवाहरलाल नेहरू की जीवनी के अनेकों अध्याय अभी और लिखे जांयगे किन्तु अभी तो यह संस्करण यहीं समाप्त होता है।